विपाशा

हिमाचल प्रदेश के भाषा एवं संस्कृति विभाग की द्वैमासिक पत्रिका
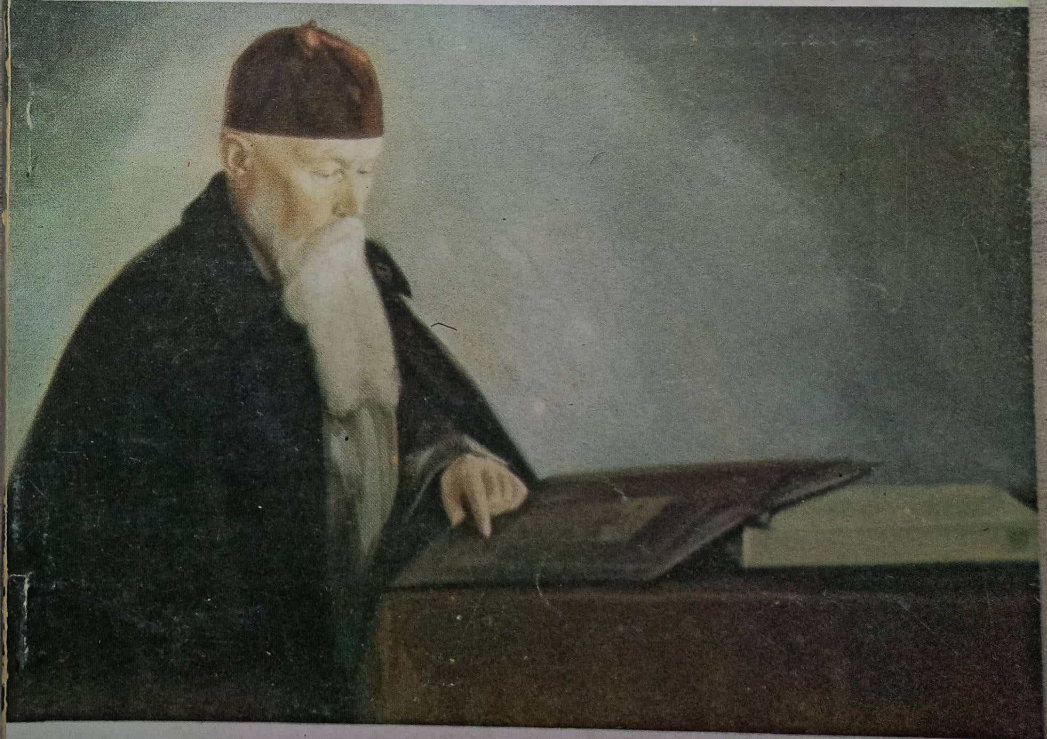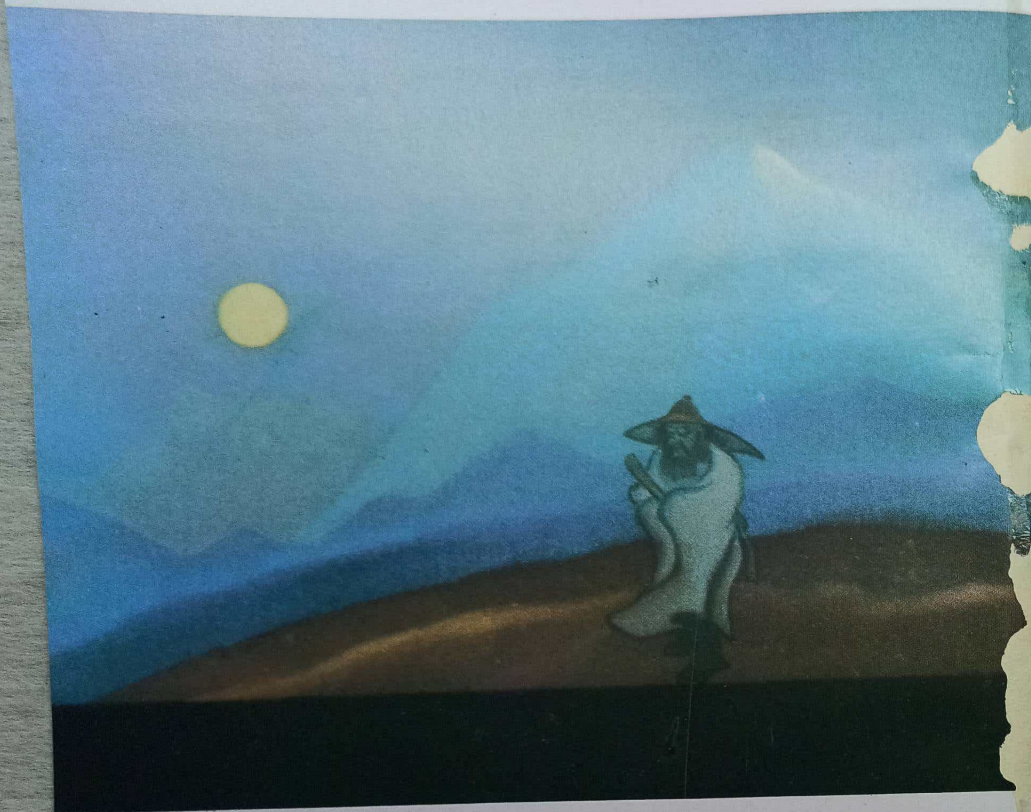
'मौन' निकोलाई रोरिक की कृति, 1939, बंगलौर में उनके निजी संग्रह में सुरक्षित। ऊपर का चित्र

मुख पृष्ठ : निकोलाई रोरिक का उनके पुत्र स्वायातोॅ स्लाव रोरिक द्वारा निर्मित चित्र

सौजन्य : सोवियत संस्कृति सदन, नई दिल्ली

विपाशा

साहित्य, संस्कृति एवं कला की द्वैमासिकी
वर्ष-5, अंक-28, सितम्बर-अक्तूबर, 1989

मुख्य संपादक
सी०आर०बी०ललित
निदेशक, भाषा एवं संस्कृति, हि० प्र०

संपादक
तुलसी रमण

संपर्क : संपादक-विपाशा, भाषा एवं संस्कृति विभाग, हि० प्र०
त्रिशूल, शिमला-171003 दूरभाष : 3669, 6846, 4614

वार्षिक शुल्क : दस रुपये, एक प्रति : दो रुपये

क्रम

पाठकीय

मधुकर भारती (जुब्बल, जिला शिमला)

विपाशा का अंक तेईस मिला, बोर्खेज़ पर परिचयात्मक लेख देकर आपने हमें उपकृत किया है। पूर्व की प्राचीन परम्पराएं व संस्कृतियां पश्चिमी चिन्तकों, दार्शनिकों को आत्यन्तिकता की सीमा तक प्रभावित करती रही हैं। जिन महान लेखकों ने ज्ञान के हर क्षेत्र में अपने वैचारिक दर्शन को पूर्व की वैदिक सम्पदा के सम्यक् अध्ययन से पुष्ट और विकसित किया है बोर्खेज़ उनमें एक बढ़िया उदाहरण है। उत्कृष्ट विदेशी साहित्य की प्रस्तुति के इस क्रम को बनाए रखते हुए यदि आप रिल्के, यीटस, पाज़, वोज्नेसेन्स्की और मोराविये आदि पर इसी तरह की सामग्री जुटा सकें तो हम आभारी होंगे।

नरेश पंडित (मंडी हि० प्र०)

पिछले चार सालों में विपाशा ने हिमाचल की साहित्यिक ज़मीन को सींचा है और कई नई सम्भावनाएं भी पैदा की हैं। लेकिन किसी पत्रिका के लिए यह अर्सा उसके पूर्ण मूल्यांकन के लिए काफी नहीं होता। दुःख के साथ लिखना पड़ रहा है कि कई बार अधकचरी रिपोर्ताज (अंक 25, कथा शिविर मण्डी) ऐसे लोगों की छपती हैं जिन्हें केवल दूसरों पर थूककर ही नाम स्थापित करना है।

कुलदीप सिंह दीप (नई दिल्ली)

अंक 26 पाकर प्रसन्नता हुई। विभिन्न काव्यकारों से मुलाकात कराने का प्रयास प्रशंसनीय रहा। कविताएं भी विशेष ही हैं। सामूहिक रूप से इतने कवियों का पाठ सहित परिचय करवाना अन्यत्र नजर नहीं आता। नेहरू जन्म शताब्दी पर प्रो० सत्येन्द्र शर्मा द्वारा लिखा लेख "पंडित नेहरू की राजनीतिक संसृष्टि" अच्छा लगा।

हरदयाल सिंह ठाकुर (बाजार, कुल्लू)

अंक 26 में मुझे कहानी 'मंगलाचारी' बहुत पसन्द आई। पियेग ओसतेग सोतुयेव की कविता 'पृथ्वी से एक अंश कविता' बहुत अच्छी लगी। 'विपाशा' की लोकप्रियता को देखकर मैं सिफारिश करता हूं कि इसे दो मास की जगह एक मास में प्रकाशित करवाया जाये।

सेन्नी अशेष (पांवटा साहिब)

'विपाशा', मई-जून 1986 में 'पहाड़ पर एक बिम्बः पंडित नेहरू' में आपने नेहरू जी के मनाली वाले संस्मरणों को देकर मुझे मानो मनाली पहुंचा दिया। कानम (किन्नौर) से बचपन

में भागने वाले पालदन नेगी के सलोने गैस्ट हाऊस में मैं बहुत बार इसीलिए ठहरता रहा हूं कि वह बूढ़ा आदमी बालक-से लहजे में मुझे नेहरू के किस्से सुनाता रहा है। पिछली बार (दोनों पांवों से बचपन से वंचित) डा० महाराज कृष्ण जैन की व्हीलचेयर को हिडिंबा से नीचे लाते हुए जब मैंने पालदन की बातें शुरू कीं तो कृष्ण जी व उनकी पत्नी उर्मिकृष्ण दोनों उससे मिलने को मचल उठे। हम सबका जो स्वागत पालदन ने किया और जिस भांति फुर्सत में आकर नेहरू के संस्मरण सुनाए, वे अविस्मरणीय हैं। पालदन के यहां नौकर-चाकर नहीं हैं। वह अपने ग्राहकों को भोजन, चाय, नाश्ता सब स्वयं देता है। इसके बावजूद दुनिया-भर के सैलानी उसके यहां एक बार आ जाने के बाद, बार-बार अपने देश से ही 'पालदन नेगी गेस्ट-हाऊस' में बुकिंग करा लेते हैं और महीने दो-महीने या छह-छह महीने के लिए उसके यहां चले आते हैं। कमाल की बात यह है कि इस बूढ़े किन्नर की टूटी-फूटी भाषा को दुनिया का हर सैलानी समझ लेता है। सैलानियों को अपने बाग के चुने हुए सेब उपहार में देना उसकी आदत है।

नेहरू ने पालदन के स्वभाव के संग बहुत मजे लूटे हैं, यह पालदन के संस्मरणों से मालूम हो जाता है। यों भी नेहरू सरल लोगों के रसिया थे। वे जंगल में घुसकर नेहरू की बातें करते अपरिचित व्यक्ति से अक्सर गाली भी सुन लेते थे।

किन्नौर से एक और भी लड़का भागा था उन दिनों-बसन्त नेगी। वही नेगी जिसके व्यंग्य चित्र देश भर की पत्रिकाएं प्रकाशित करती रहीं।

राजकुमार राकेश (मंडी हि० प्र०)

विपाशा के माध्यम से पिछले कुछ महीनों से हिमाचली हिन्दी कहानी पर चल रही बहस को मैं बड़े ध्यान से पढ़ता रहा हूं। लोहिया के लेख पर जितनी भी प्रतिक्रियाएं आई हैं उनमें से कोई भी प्रतिक्रियाजन्य उत्तेजना एवं आत्म-केन्द्रण से मुक्त नहीं है। इस दृष्टि से मण्डी के भाई केशव चन्द्र का पत्र तनिक भिन्न है। अलबत्ता कहानीकारों की जिस पीढ़ी का वे अपनी दूर-दृष्टि से वर्णन करते हैं उसमें उनका निकट-दृष्टि दोष एकदम मुखर होकर सामने आ गया है। उनके घर के सामने एक कहानीकार रहता है जिसे अपने आत्मकेन्द्रण की कभी चिन्ता नहीं रही। शायद बहुत से हिमाचली कहानीकारों ने योगेश्वर शर्मा के लेखन से साक्षात्कार किया हो। 'बार्ड नम्बर सात का प्रत्याशी', 'नंगा आदमी' और 'काला ढांख का मसाण' जैसी कहानियों के ओजस्वी लेखक को नजरअंदाज़ करना लोहिया जी की भूल स्वीकार की जा सकती है पर भाई केशव चन्द्र को भी उनका स्मरण नहीं आया। यह बहुतों की समझ से परे की चीज़ है। यूं लोहिया जी एवं उस संदर्भ में सभी व्याख्याकारों एवं आलोचकों की प्रतिभा पर मुझे कभी कोई शक नहीं रहा पर हिमाचली लेखन को अपनी आलोचना की तमीज़ तो निश्चित रूप से अभी सीखनी है।

राजीव कुमार (चंडीगढ़)

विपाशा का 'वागर्थ, विश्व कविता उत्सव' से सम्बन्धित अंक संग्रहणीय बन पड़ा है। इसमें उत्सव के सात दिनों में हुए कविता पाठ और बहस को कुछ ऐसे प्रस्तुत किया गया है कि जो लोग वहां मौजूद भी नहीं थे उन्हें सब कुछ सामने घटता-सा मालूम पड़ता है। यह उत्सव का बहुत सजीव 'आंखों देखा हाल' है, जिसमें महत्वपूर्ण बातचीत और कविताओं को भी संजोया

गया है। इस अंक का आवरण भी आकर्षक है और सार्थक भी। एक अंक में ऐसी सामग्री जुटाना बहुत श्रम की अपेक्षा रखता है। बधाई !

संजय वर्मा (भोपाल)

विश्व कविता उत्सव के अवसर पर अनेक पत्रिकाओं के विशेषांकों का विमोचन हुआ था जिनमें विश्व कवियों की कविताओं के अनुवाद और कवि परिचय विज्ञापन सहित दिए थे। उत्सव सम्पन्न होने के बाद मेरी नज़र में 'विपाशा' ही ऐसी पत्रिका है जिसमें इस उत्सव का पूरा विवरण दृश्य को सजीव करते हुए दिया गया है और कवियों की कविताओं का चयन भी अच्छा है। बल्कि कुछ ऐसे अनुवाद भी जुटाए गए हैं जो भारत भवन में नहीं पढ़े गए। इससे भारत भवन में उपस्थित हुए अनुवादकों के अतिरिक्त भी कुछ और लोग इस अंक में शामिल हुए हैं। इसमें न तो उत्सव को अतिरंजना के तहत प्रस्तुत किया गया है और न ही किसी पूर्व-ग्रह के तहत नकारात्मक रवैया अपनाया गया है। जो कुछ कविता को लेकर घटित हुआ उसी पर एकाग्र करके निरपेक्षता का पालन हुआ है और कहीं-कहीं सिल्की कुर्तों और उलझी दाढ़ियों की ओर भी सार्थक संकेत हुए हैं।

अवतार एनगिल (शिमला)

विपाशा के अंक 27 में प्रकाशित कविताएं जब धर्मशाला वाली गोष्ठी में सुनीं थीं, तब हम सब ने तात्कालिक और धुंआधार प्रतिक्रियाएं दीं थीं। आज इन्हें पढ़ते हुए मुझे लग रहा है कि कविताओं पर इस तरह से बात करना कितना खतरनाक हो सकता है।

ज़िया सिद्दीकी की कविताओं की बुनावट ऊपर से हल्की-फुल्की दिखने पर भी, भीतर से महीन लगी। पढ़ाते-पढ़ाते मां का संगीत में सो जाना, बच्चे के सबक की कड़ी का खोना और हाजत के बाद उसका चीखकर मां से जागते रहने का इसरार करना (सोओ मत), वजीरन का मिट्टी से रिश्ता और उसकी औरत न होकर एक स्थिति होना (वजीरन की समस्या), सन्ते ड्राईवर का अपने ट्रक के नीचे कुचले गये बच्चे की मौत के बाद के हादसे को याद करते हुए अपने बेटे बचित्तर को गले लगाना (असंभव नहीं)—कविताओं में निहित चुभन को सार्थकता देते हैं।

प्रफुल्ल कुमार के तेवर प्रतिबद्ध होते हुए भी कलात्मकता लिए हुए हैं। उनकी समझ साफ है, तथापि मुझे वह थोड़े लाऊड लगे।

देशांतर के तहत ब्रेश्ट की पैनी रचनाएं रश्तर-सी काट लिए हुए हैं। माहौल की विद्रूप स्थिति में कवि की छटपटाहट 'आरामदेह कार में सफ़र' जैसी कविता में खुल कर सामने आई है। इन कविताओं के बढ़िया अनुवाद के लिए गिरधर राठी को साधुवाद।

संपादकीय

नग्गर के रेरिख

चित्रकार, चिंतक और कवि निकोलाई रेरिख का भारतवर्ष के प्रति आरंभ से ही गहरा आकर्षण रहा। सन् 1928 में वह कुल्लू की घाटी के नग्गर गांव में आकर स्थायी रूप से बस गए थे और यहीं इनका देहावसान भी हुआ। 'नग्गर' में उनका घर आज भी रेरिख आर्ट गेलरी के रूप में दर्शकों के लिए खुला रहता है।

'कुल्लू-मनाली में खामोश हकीकत का अहसास होता है'—ऐसा मानने वाले पंडित नेहरू जब एकाधिक बार आराम के लिए इस घाटी में आए तो प्राकृतिक सौन्दर्य के लिए विश्व-भर में कुल्लू-मनाली की बहुत प्रसिद्धि हुई। वास्तव में निकोलाई रेरिख के आमंत्रण पर ही नेहरू जी पहले-पहल मनाली आए थे।

अपने जीवन के आखिरी लगभग बीस वर्षों में गांव नग्गर में कला साधना करने वाले मनीषी रेरिख का हिमालय के सौन्दर्य और यहां की बहुमूल्य सांस्कृतिक संपदा के प्रति गहरा लगाव रहा। उन्होंने इसे लोक-संस्कृति से लेकर दार्शनिक गहराइयों तक समझकर, हिमालय सम्बन्धी बहुआयामी ज्ञान को समूचे विश्व के समक्ष प्रस्तुत किया।

दूसरे विश्व महायुद्ध से पूर्व रेरिख ने विश्व की समग्र सांस्कृतिक संपदा को महायुद्धों के विनाश से बचाने के उद्देश्य से एक ऐसे सर्वसम्मत समझौते की परि-कल्पना की जिसके तहत विश्व में किसी भी युद्ध के दौरान सांस्कृतिक महत्व के हर स्थान व वस्तु आदि की सुरक्षा निश्चित की जा सके। कालान्तर में इसे 'रेरिख पैक्ट' के रूप में माना गया।

इधर निकोलाई रेरिख के चिंतन और कृतित्व का नये सिरे से मूल्यांकन हो रहा है। इसी वर्ष उनकी 115वीं वर्षगांठ के उपलक्ष्य में विश्व के अनेक स्थानों में महत्त्वपूर्ण आयोजन सम्पन्न हुए। भारतवर्ष में दिल्ली तथा नग्गर (कुल्लू) में रेरिख के चिंतन, कला और लेखन को लेकर गोष्ठियां हुईं। इस अंक में 'निधि' के अन्तर्गत निकोलाई रेरिख के व्यक्तित्व पर प्रकाश डालते हुए उनके कृतित्व की कुछ छवियां भी प्रस्तुत हैं।

आठ कवियों की कविताएं इस अंक में एक साथ दी गई हैं। प्रयाग शुक्ल और वंशी माहेश्वरी को छोड़कर शेष कवियों की ये कविताएं धर्मशाला में आयो-जित 'कविता गोष्ठी' में पढ़ी गई थीं। गोष्ठी में प्रस्तुत कुछ कविताएं पिछले अंक में भी दी गई थीं।

कहानी, समीक्षा व लेख के अतिरिक्त शिमला में हुए 'वत्सल निधि लेखक शिविर' की रिपोर्ट भी इसमें शामिल है।

निधि

प्रस्तुति : बरयाम सिंह

निकोलाई रेरिख

बहुमुखी प्रतिभा के धनी निकोलाई रेरिख का जीवन अत्यंत घटनापूर्ण रहा है। अपनी मातृभूमि रूस में बिताये आरंभ के चालीस वर्ष रूस और रेरिख की नियति में युगांतरकारी घटनाओं के वर्ष रहे हैं। 1904 का रूस-जापान युद्ध, युद्ध में रूस की पराजय, 1905 की प्रथम रूसी क्रांति, क्रांति की असफलता के बाद घोर प्रतिक्रियावाद का दौर, प्रथम विश्व युद्ध, 1917 की फरवरी और अक्तूबर क्रांतियों जैसी घटनाओं ने रेरिख के चिंतन और कला को विशिष्ट अन्तर्वस्तु प्रदान की है। जीवन के प्रति सक्रिय दृष्टिकोण के समर्थक रेरिख अपने अनुसंधान कार्य के सिलसिले में न केवल रूस के कोने-कोने में गये बल्कि क्रांति के बाद अनेक वर्ष मध्य एशिया के देशों में भयानक परिस्थितियों में भ्रमण और अध्ययन करते हुए बिताये।

रेरिख केवल उत्कृष्ट और मौलिक चित्रकार ही नहीं बल्कि अनुभवी पुरातत्ववेत्ता, कवि, लेखक और सामाजिक कार्यकर्ता भी रहे हैं। अपने समय की सामाजिक-राजनैतिक समस्याओं, संस्कृति के अतीत और वर्तमान, विभिन्न कला और साहित्य आंदोलनों के प्रति वह अत्यन्त सचेत और संवेदनशील रहे। संस्कृति की मनुष्य को मनुष्य बनाये रखने की क्षमता और सामर्थ्य पर रेरिख को जीवन पर्यंत अटूट विश्वास रहा और संभवतः इसी विश्वास ने ही उन्हें दूसरे क्षेत्रों की संस्कृति का अध्ययन करने के लिए भी प्रेरित किया। यूरोप केंद्रित चिंतन पद्धतियों से मुक्त निकोलाई रेरिख गैर यूरोपीय देशों और जातियों की संस्कृति में उच्च मानवीय मूल्यों का दर्शन पा सकने में सफल रहे। इसीलिए रेरिख उच्चतम अर्थों में सच्चे संस्कृतिकर्मी के रूप में विश्व-भर में आदर पा सके।

निकोलाई रेरिख का जन्म 1874 में रूस की तत्कालीन राजधानी और संस्कृति केंद्र पीटर्सबर्ग (अब लेनिनग्राद) में एक सुशिक्षित और संपन्न परिवार में हुआ। बचपन में ही उनमें कला और इतिहास में रुचि पैदा हुई। कला अकादमी में शिक्षा ग्रहण करने के साथ-साथ वह पीटर्स वर्ग विश्वविद्यालय के विधि संकाय में भी पढ़ाई करते रहे। पिता की इच्छा थी कि निकोलाई शिक्षा के बाद वकील बने पर अपने समय के प्रख्यात चित्रकार स्तासोव के प्रोत्साहन पर युवा निकोलाई कला साधना में जुट गये। ऐतिहासिक विषयवस्तु पर आधारित अपने चित्रों से वह प्रख्यात कला पारखी त्रेत्याकोव और तोल्स्तोय का ध्यान और प्रशंसा पाने में सफल रहे। रेरिख की कला साधना चित्रकारिता तक ही सीमित नहीं रही बल्कि प्राचीन रूस के कला-वैभव के सुव्यवस्थित, अध्ययन तक विस्तार पाती रही।

प्राचीन घटनाओं और व्यक्तियों के चित्रण को रेरिख ने नये आयाम प्रदान किये।

उनके चित्र ऐतिहासिक तथ्यों की व्याख्या मात्र नहीं बल्कि इन ऐतिहासिक तथ्यों को मानव नियति और मानव इतिहास के परिप्रेक्ष्य में देखते हुए नया अर्थ और प्रासंगिकता प्रदान करते हैं। इन चित्रों में प्राचीन स्लाव और बाइकिंग जातियों के भावना जगत् की विविधता की रोचक झलक मिलती है। स्लाव जातियों की प्राचीन संस्कृति की खोज ने उन्हें मध्य युगीन यूरोप और पूरब के देशों की संस्कृति की ओर आकृष्ट किया।

प्रथम विश्व युद्ध के दिनों में रेरिख विभिन्न धर्मों के सारतत्व का अध्ययन करने लगे। युद्ध की विनाशलीला के प्रति वह तटस्थ नहीं रह सके। युगों से मनुष्य जाति जिस संस्कृति और कला मूल्यों का निर्माण करती आ रही है उसे संहार से कैसे बचाया जाये—यह प्रश्न उन्हें इन्हीं दिनों से उद्वेलित करने लगा और जीवन पर्यंत उद्वलित करता रहा। मंगोलिया, तिब्बत, सिक्किम व यूरोप के कई देशों का भ्रमण करने के बाद रेरिख ने 1928 में स्थाई रूप से हिमाचल प्रदेश की कुल्लू घाटी के एक गांव नग्गर में रहने का निश्चय किया। यहीं उन्होंने अपने पुत्रों के सहयोग से हिमालय अध्ययन संस्थान 'उरुस्वाति' की भी स्थापना की। संस्थान का उद्देश्य मुख्यतः भारत और हिमालय से लगे देशों का अध्ययन करना था, विशेषकर संस्कृति और कला पक्ष का।

भारत के प्राचीन इतिहास और आख्यानों के प्रभाव की झलक यों रेरिख के कुल्लू प्रवास से पहले की अनेक कलाकृतियों में मिलती है पर हिमालय अपनी समस्त विराटता, विविधता और सौंदर्य के साथ कुल्लू प्रवास के बाद ही उनके कृतित्व की केंद्रीय विषय वस्तु बनता है। प्रवास के ये वर्ष अध्ययन, चिंतन और कला की दृष्टि से अत्यन्त फलप्रद रहे। यहीं रहते हुए उन्होंने रूसी संस्कृति और कला पर अनेकों पुस्तकें और लेख लिखे।

दूसरे विश्वयुद्ध के दिनों में रेरिख ने अपने लेखन के माध्यम से, युद्ध विरोधी आह्वानों से शांतिकामी जनता को प्रेरणा देते रहे। 1942 में उनके यहां पंडित जवाहरलाल नेहरू अपने परिवार के साथ रुके। 1947 में रेरिख का नग्गर में ही देहांत हुआ।

रेरिख की कृतियों में प्रकृति एक नया आध्यात्मिक अर्थ ग्रहण करती है। हिमाच्छादित पर्वत शिखर मनुष्य में पवित्रता और शुचिता की भावना पैदा करते हैं। हिंदू देवताओं, प्राचीन स्लाव व रूसी संतों के चित्र मनुष्य जाति के आध्यात्मिक अन्वेषण और साधना के विविध रूप प्रस्तुत करते हैं।

रेरिख प्रखर चिंतन और चित्रकार होने के साथ-साथ समर्थ कवि भी थे। पर उनके रचनात्मक व्यक्तित्व का यह पक्ष अधिक उजागर नहीं हुआ है। उनकी कविताओं का पहला संकलन 'त्स्वेती मोरी' यों 1921 में प्रकाशित हो सका पर संकलन की अधिकांश रचनाओं से प्रबुद्ध रूसी पाठक पहले ही परिचित हो चुका था कविताएं उन्होंने अधिक नहीं लिखीं पर उनके कृतित्व में इन कविताओं का विशेष स्थान है। उनकी कविताएं रूसी दार्शनिक कविता की समृद्ध परम्परा को आत्मसात् करते हुए उसे नई कलात्मक और वैचारिक उच्चता प्रदान करती हैं। संकलन की काव्यगत नव्यता इस दृष्टि से अत्यन्त विस्मयकारी है कि रेरिख अपने समय की रूसी कविता की छंद, लय, मात्रा और वाक्य रचना की अनेकों रूढ़ियों को तोड़ने का साहस कर सके। जहां तक वैचारिक पत्र का संबंध है इन कविताओं में प्राच्य आध्यात्मवाद, विवेकानंद और रवींद्रनाथ ठाकुर का प्रभाव स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है।

पूरब का एक महान अन्वेषक : रेरिख

□ एल० वी० मित्रोखिन

विश्व का शायद ही कोई ऐसा देश होगा जहां रूस के उत्कृष्ट विद्वान, यात्री, चित्रकार निकोलाई रेरिख का नाम नहीं जाना जाता होगा। परन्तु रूस के अतिरिक्त संभवत: विश्व का कोई अन्य देश नहीं है जिसने उनके जीवन तथा कला के क्षेत्र में भारत की भान्ति महत्वपूर्ण भूमिका निभाई हो। उन्होंने अपने सृजन कार्य के 20 वर्ष इस देश को समर्पित किए। वे जीवन पर्यन्त जवाहर लाल नेहरू, रवीन्द्र नाथ टैगौर, सी० वी० रमन तथा भारत की अन्य प्रसिद्ध राजनैतिक तथा सांस्कृतिक विभूतियों के साथ मैत्री बन्धन में बंधे रहे। भारत के बारे में रेरिख ने लिखा है कि "हे भारत, तेरे प्रति सदैव उस प्रसन्नता का अनुभव करता रहूंगा, जो कि बसन्त के उपवन में पहले फूल के खिलने पर होती है।

नियोलाई रेरिख (1874-1947) ने सृजनात्मक अन्वेषण तथा फलदायी जोखिमों से भरपूर एक असाधारण जीवन व्यतीत किया। एन० के० रेरिख ने बहुत पहले, 20वीं शताब्दी के आरम्भ में भारत और मध्य एशिया की वैज्ञानिक खोज यात्रा करने का स्वप्न लिया था।

वे लिखते हैं कि "अपने जीवन के आरम्भिक वर्षों से ही मैंने अपने आपको मध्य एशिया के प्रति आकृष्ट महसूस किया। मैं भारतीय निधियों के बारे कुछ रच नहीं सका क्योंकि मैं सदैव मंगोलियन महाकाव्यों द्वारा आकृष्ट रहा।"

इस बात पर ध्यान देना होगा कि पूरब में उनकी रूचि 'अध्यात्मवाद' के प्रति किसी प्रकार के अस्वस्थ मनोभाव के कारण कभी नहीं रही जैसा कि 19वीं सदी के अन्त तथा 20वीं सदी के आरम्भ में रूसी विद्वानों के कुछ दायरे में विद्यमान था। इस प्रकार निकोलाई रेरिख ने सन् 1900, में जब वे पेरिस में थे, अपनी प्रेयसी यलेना इवानोवना को लिखा कि उनके मित्र उन्हें 'आध्यात्मिक' सेवा का प्रलोभन देते हैं, जिसमें न तो उन्हें कोई विश्वास है और न ही वे विश्वास करना चाहते हैं। (रेरिख एन० के०, पत्र और अन्य सामग्री, पाण्डुलिपि अभिलेखागार, स्टेट ट्रेट्यास्कोवस्की गैलरी, निधि 44, मास्को) बाद में रेरिख ने अद्यार (मद्रास) स्थित थियोसोफिकल केन्द्र के कुछ नेताओं से पत्र व्यवहार किया परन्तु उनके परिवार के किसी भी सदस्य ने थियासोफिकल आन्दोलन में कभी भाग नहीं लिया। जहां तक 'रेरिख के दिल के रहस्यमयी तारों का संबन्ध' है, उनके बारे में चित्रकार यों कहते हैं—

"विभिन्न देशों में कुछ लोगों ने मेरे रहस्यवाद के विषय में लिखा है। वे उसका इस रूप में अस्पष्ट वर्णन करते हैं कि मैं स्वयं भी यह नहीं समझ पाता कि वास्तव में वे लोग कहना क्या चाहते हैं। मैंने इस बात पर बल देते हुए कई बार कहा है कि मैं रहस्यवाद शब्द से कतराता हूं।

यह शब्द मुझे अंग्रेज़ी के शब्द 'मिस्ट' की याद दिलाता है जिसका अर्थ धुन्ध होता है। मेरी प्रकृति में प्राय: कुछ भी धुन्धला और अस्पष्ट नहीं है। मैं सुस्पष्टता तथा जीवन्तता पसन्द करता हूं। मानव विवेक में रहस्यवाद का अर्थ यदि सच्चाई तथा एकनिष्ठ ज्ञान की खोज है तो मुझे इस परिभाषा के खिलाफ कुछ नहीं कहना है। परन्तु जहां तक मैं समझता हूँ, इस मामले में, वे वास्तविक ज्ञान को नहीं अपितु कुछ और ही ले रहे हैं, जिसकी व्याख्या करने में वे स्वयं भी स्पष्ट नहीं हैं। और जो अस्पष्ट होता है वह हानिकर होता है।" '(डायरी, 'मेरी जीवनी, एन० के० रेरिख; स्कैच, 'रहस्यवाद')

वास्तव में रेरिख ने अपने दार्शनिक जगत् अथवा अपनी गतिविधियों को धार्मिक शिक्षा अथवा संस्थानों के साथ कभी नहीं जोड़ा। भले ही कभी-कभार रेरिख का उनके साथ सम्पर्क रहा हो। उनके दार्शनिक अन्वेषणों के अनुसार निरपवाद रूप से रेरिख में मूल स्रोतों को पकड़ने की अभिलाषा रही है और आरम्भ में भारतीय दार्शनिक विचारों तक चित्रकार की पहुंच भारतीय विचारकों की मूल कृतियों के अध्ययन से ही आरम्भ हुई। स्वयं चित्रकार के अनुसार रामकृष्ण, विवेकानन्द की कृतियों तथा उपनिषद्, भगवद्गीता तथा टैगोर की कृतियों के माध्यम से वे भारतीय जनता के आध्यात्मिक जीवन से अवगत हुए।

भारत के प्रति रेरिख की रुचि स्वाभाविक थी क्योंकि यह 19वीं सदी के अन्त तथा 20वीं सदी के आरम्भ में रशियन इण्डोलोजी से उत्प्रेरित थी। इवान मिन्येव त्सरवत्सकी और ओल्डनवर्ग जैसे रूसी प्राच्यविद् पहले ही अपनी विश्व-विख्यात कृतियों के माध्यम से अपना डंका बजा चुके थे।

रेरिख के सृजनात्मक कार्यों में भारतीय विषय 1905 से लगातार स्थान लेने लगे। 1905 में रेरिख ने 'देवाश्री अबन्तु' लिखा। 1906 में उन्होंने देवाश्री अबन्तु को पक्षियों सहित चित्रित किया। 1910 में उन्होंने 'बॉर्डर ऑफ ज़ारिज़्म' लिखा और 1916 में 'बॉर्डर ऑफ ज़ारिज़्म' तथा 'मनुज़ विज़डम' को चित्रित किया। सचित्र सीरीज़ 'सन्ज़ ऑफ द ईस्ट' जिसकी रचना उन्होंने 1920 में लन्दन में आरम्भ की, ने 'द इण्डियन पाथ' (1913), 'गायत्री' (1916) तथा टैगोर की प्रेरणा पर आधारित कुछ कविताओं की परम्परा को आगे बढ़ाया। सम्भव है कि दृश्य कृतियों की अनुपस्थिति में रेरिख ने आरम्भ में साहित्यिक, कलात्मक मॉडलों की रचना की, बाद में उन्होंने उन्हें अपनी चित्रकला में चित्रित किया।

शीघ्र ही रेरिख की सृजनात्मक कृतियों में भारत ने अपने महान दार्शनिक व्यापकीकरण जैसे विषयों के माध्यम से प्रवेश किया जिसने चित्रकार की बहुत-सी, विशेषकर धार्मिक विषयक, कृतियों पर अपनी छाप छोड़ी।

रेरिख की आरम्भिक साहित्यिक कृतियाँ—'देवाश्री अबन्तु' और 'लक्ष्मी विजयी' न केवल भारतीय मिथकशास्त्र के प्रति उनकी श्रद्धा की साक्षी हैं अपितु प्राच्य दार्शनिक जगत् के दृष्टिकोण सम्बन्धी उनके ज्ञान को भी प्रमाणित करती हैं।

देश पर लिखी पुस्तकें, जिन्होंने रेरिख को बहुत आकृष्ट किया था, काफी समय तक उनके कलात्मक सृजन कार्यों की वैज्ञानिक अभिरुचियों तथा दार्शनिक दिशाओं को पूर्ण रूप से सन्तुष्ट नहीं कर पाई। 'सौदर्न्य भारत में वास करता है, भारत का महान पथ लुभावना है'—रेरिख ने 'द इण्डियन पाथ' शीर्षक से अपने एक स्कैच में लिखा है (एन० के० रेरिख कलैक्शन ऑफ वर्कस, खण्ड। (मास्को, 1914)। ये स्कैच रूसी प्राच्यविद् वी० वी० गलूवेव की भारत यात्रा के

पश्चात् 1913 के पतझड़ में पेरिस में रेरिख के साथ हुई उनकी बैठक में व्यक्त विचारों पर आधारित था। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि रेरिख ने गलूवेव के साथ आगामी वैज्ञानिक-कलात्मक खोज-यात्राओं तथा उनमें उनकी भागीदारी सम्बन्धी योजनाओं पर विचार विमर्श किया।

पिट्सबर्ग में भारतीय कला संग्रहालय स्थापित करने हेतु रेरिख के प्रयास इसी काल से सम्बन्ध रखते हैं।

रेरिख प्रथम विश्व महायुद्ध के कारण अपनी भारत यात्रा की योजना को साकार नहीं कर पाये। 1916 में निमोनिया के हमले के कारण उनके स्वास्थ्य में पर्याप्त गिरावट आ गई और अपने चिकित्सक की सलाह पर वे कार्लिया चले गये, जहां वे अक्तूबर की क्रांन्ति में व्यस्त हो गए।

रेरिख की डायरियों और साहित्यिक कृतियों में यह अंकित है कि कार्लिया में उनके जीवन के वर्ष भारत सम्बन्धी ख्यालों से सराबोर रहे और भारत यात्रा की उनकी तैयारियां जारी रहीं।

अक्तूबर की महान सामाजिक क्रान्ति के तुरन्त बाद रेरिख ने कार्लिया को छोड़ दिया, जिसे उस समय फिनलेण्ड ने अपने कब्जे में कर लिया था, और वे ब्रिटेन चले गए। लन्दन में उनके बहुत सारे प्रशंसक बन गए। उन्हें एक स्थायी नौकरी भी दे दी गई और उनसे आग्रह किया गया कि वे लन्दन में ही बस जाएं। इसी प्रकार का प्रस्ताव उन्हें जर्मनी से भी प्राप्त हुआ। परन्तु इन दोनों में से कोई भी प्रस्ताव उन्हें आर्कषित न कर सका। दूसरी ओर रवीन्द्रनाथ टैगोर के साथ उनकी व्यक्तिगत बैठक से वे बहुत प्रभावित हुए। बाद में उन्होंने लिखा, "मैंने टैगोर से मिलने का स्वप्न लिया था और वे यहां लन्दन में 1920 में मेरी शिल्पशाला में व्यक्तिगत रूप में मौजूद थे। टैगोर को रूसी चित्रकला के बारे में जानकारी मिली और उन्होंने मिलने की इच्छा व्यक्त की। इस विशेष समय पर भारतीय श्रृंखला 'ड्रीम्ज ऑफ द ईस्ट' को चित्रित किया जा रहा था। इस संयोग पर कवि ने जो आश्चर्य व्यक्त किया था, वो मुझे भली-भांति याद है। मुझे यह भी भली प्रकार से याद है कि किस शालीनता के साथ उन्होंने अन्दर प्रवेश किया था। उनके तेजस्वी व्यक्तित्व ने हमारे हृदयों को स्पन्दित कर दिया।" (एन० के० रेरिख, 'टॉल्स्टॉय एण्ड टैगोर,' 'ऑकटयाब्र' मास्को, 1958, न० 10)

आगे चल कर रेरिख और टैगोर में निरन्तर पत्र व्यवहार चलता रहा। वे एक-दूसरे को अपनी-अपनी गतिविधियों से अवगत करवाते रहते थे और सांस्कृतिक-शैक्षिक क्षेत्रों में तथा शान्ति हेतु संघर्ष के लिए अपने उद्यम जोड़ते रहते थे।

फिनलैण्ड से इंगलैण्ड जाते हुए रेरिख के हृदय में कभी अमेरिका की यात्रा करने का विचार नहीं आया। क्योंकि उन्होंने यूरोप में बसने का प्रयत्न नहीं किया। इसलिए यह स्पष्ट है कि चित्रकार की इंगलैण्ड से सीधा भारत जाने की इच्छा थी। रूसी चित्रकार की कला के प्रति अंग्रेजों द्वारा दर्शाए गए उत्साह के बावजूद भी वे उनकी 'ब्रिटिश क्राऊन के मोती' यानी भारत की यात्रा करने की योजना में बाधक नहीं बन सके। भारत के प्रति रेरिख की अभिरुचि के कारण राज्य के उन अधिकारियों, जो भारत को एक उपनिवेश के रूप में रखने हेतु जिम्मेदार थे, में बहुत सन्ताप उत्पन्न हो गया हो। वे हर रूसी वस्तु को घृणा की दृष्टि से देखते थे और 'सोवियत' शब्द को तो वे मात्र नकारात्मक रूप में ही लेते थे।

परन्तु रेरिख ने कभी ऐसा कुछ नहीं कहा जिससे इस व्यवहार के सम्बन्ध में सोवियत यूनियन को भनक लगे परिणामस्वरूप ब्रिटिश इन्टैलिजैंसिया को सतर्क किया गया और रेरिख तथा उनके प्रिय भारत के मध्य एक दीवार खड़ी कर दी गई। फलस्वरूप एक लम्बे समय तक लन्दन से भारत आने के उनके प्रयास सफल नहीं हो सके।

रेरिख ने यू० एस० ए० में अपने चित्रों कि प्रदर्शनी के आयोजन के प्रस्ताव को स्वीकारते हुए भारत आने की अपनी योजनाओं को क्षण-भर के लिए भी नहीं बिसराया। सम्भवत: एक समय रेरिख को थियोसोफिकल सोसाईटी की मदद से भारत आने की बड़ी आशा थी।

इस बात पर ध्यान देना होगा कि रेरिख के बड़े पुत्र यूरी का पूर्वी देशों का मूल तथा बहुरंगी अध्ययन उनके परिवार के लन्दन वास से जुड़ा हुआ था। यूरी को तुरन्त लन्दन विश्व-विद्यालय के भारत-इरानियन विभाग में प्राच्य भाषाओं के विद्यालय में दाखिला मिल गया। जहां उन्होंने संस्कृत का अध्ययन आरम्भ किया और फिर हारवर्ड तथा प्राच्य भाषा के विद्यालय पैरिस में अपना अध्ययन जारी रखा। 1923 में पैरिस विश्वद्यिालय ने उन्हें एम० ए०(भारतीय दर्शन) की उपाधि प्रदान की।

रेरिख के बड़े पुत्र के गम्भीर प्राच्य अध्ययन ने, जो कि उनके फिनलेण्ड से प्रस्थान करने के तुरन्त पश्चात् आरम्भ हो गया था, रेरिख की एशियाई वैज्ञानिक और सांस्कृतिक खोज यात्राओं के आयोजन की योजनाओं में एक महत्वपूर्ण स्थान अर्जित कर लिया था। सम्भवत: इसी कारण काफी समय तक रेरिख द्वारा भारत के लिए प्रस्थान करने में विलम्ब हुआ।

निकोलाई रेरिख के पुत्र यूरी रेरिख ने अपनी मातृभूमि से बाहर बहुत से वर्ष व्यतीत किए परन्तु वे सदैव अपने देश के प्रति वफादार और भक्त रहे। बाद में यू० एस० एस० आर० वापस लौटने पर उन्होंने रूसी प्राच्यविदों की गतिविधियों में कुशल भागीदारी निभाई। यूरी रेरिख के सम्बन्ध में जवाहर लाल नेहरू ने लिखा है—"डॉ० रेरिख जब भारत में थे तो मैं उनसे मिला और उनके ज्ञान, भाषा-मूलक योग्यताओं और उन द्वारा कृत कार्यों ने मुझे बहुत प्रभावित किया। मुझे प्रसन्नता है कि यू० एस० एस० आर० विज्ञान अकादमी ने उनके कार्यों को ऊंचे दर्जे का ठहराया है।"

रेरिख परिवार 30 नवम्बर, 1923 को जहाज से बम्बई पहुंचा। वहां से वे देशाटन के लिए निकल पड़े और कला तथा इतिहास से जुड़े अनेक प्रमुख स्थानों का भ्रमण किया। उन्होंने अपना भ्रमण गुप्तकालीन मूर्तिकला के स्मारक एलिफैन्टा से आरम्भ किया और फिर जयपुर, दिल्ली, आगरा और सारनाथ की यात्राएं कीं, जो अपने प्राचीन बौद्धस्मारकों के लिए विख्यात हैं। बाद में वे बनारस और कलकत्ता गए और फिर दार्जलिंग पहुंचे। अन्त में रेरिख परिवार पूर्वी हिमालय की दक्षिणी तराई में स्थित सिक्किम में बस गए। जिस स्फूर्ति से रेरिख ने अपनी यात्राओं को आयोजित किया उससे यह सिद्ध होता है कि उनकी अभिरूचियां न केवल घाटियों और घनी आबादी वाले केन्द्रों तक ही सीमित थीं अपितु तिब्बत की सीमा से लगने वाले उत्तरी पहाड़ी क्षेत्रों तक भी इनका विस्तार था।

एशिया में आने के उपरान्त रेरिख शीघ्र ही बौद्ध जगत् के सम्पर्क में आ गए जिसमें वे बहुत दिलचस्पी लेने लगे। यह कदाचित् अनजाने में ही नहीं हुआ कि उन्होंने अद्यार में रुके बिना, जहां उन्हें आमंत्रित किया गया था, बम्बई से कलकत्ता होते हुए सिक्कम पहुंचने

का मार्ग लेना उचित समझा।

हम यहां पर रेरिख के दार्शनिक जगत् पर बौद्ध धर्म के प्रभाव के प्रश्न की अधिक गहराई में नहीं जाएंगे। यह एक जटिल विषय है जिसके लिए एक विशेष अनुसंधान अपेक्षित है। रेरिख के 'ईसाई से बौद्ध' बनने के प्रश्न पर विचार करने की भी कोई विशेष आवश्यकता नहीं है। इस समस्या का महत्व उनके लिए बहुत कम है। रेरिख की वृहद् दार्शनिक विचार धारा किसी धार्मिक संस्था के सिद्धान्तों और नियमों से पूर्णरूपेण स्वतन्त्र थी। परन्तु बौद्ध धर्म ने अपने दर्शन के अतिरिक्त इसलिए भी रेरिख का ध्यान आकृष्ट किया क्योंकि यह मध्य एशिया के देशों तथा सोवियत साबेइरिया के मध्य सम्प्रेषण का एक जीवन्त माध्यम था।

भारत ने बौद्धधर्म के विकास केन्द्र के रूप में रेरिख को आकृष्ट किया। उनकी बहुआयामी वैज्ञानिक और कलात्मक अभिरुचियां उनके दार्शनिक अन्वेषण से मेल खाती हैं। मध्य एशिया तथा उससे भी आगे के क्षेत्रों का अध्ययन करना प्रिज्रवालस्की तथा कोज्लोव सहित अनेक रूसी प्राच्यविदों तथा यात्रियों के हृदय का स्वप्न रहा है। तिब्रत तथा हिमालय पार के कुछ क्षेत्र तो पश्चिमी वैज्ञानिकों के लिए एक लम्बे अर्से तक अज्ञात देश ही रहे। राष्ट्र की संस्कृति के पुरातात्विक तथा ऐतिहासिक अध्ययन से उन्हें यात्राओं के आयोजन, एशियाई जनता के पश्चिम में प्रवसन तथा वहां के दास कबीलों पर उनकी संस्कृति के प्रभाव का अध्ययन करने में रेरिख को बड़ी मदद मिली। ये रेरिख के अनुसंधान के पुराने विषय थे। इसने धीरे-धीरे उन्हें उत्तरी भारत, विशेषकर सिक्किम की ओर आकृष्ट किया। सिक्किम से जलपल्ला पहाड़ के दर्रे से होते हुए एक प्राचीन मार्ग शिगादज़े तक जाता है, और वह मार्ग मंगोलिया और साईबेरिया होता हुआ आगे निकलता है।

रेरिख ने दार्जिलिग से सिक्कम और भूटान की दो वैज्ञानिक खोज यात्राएं आयोजित कीं। इस पुस्तक में 'अल्ताई हिमालय' एक विशेष अध्याय सिक्किम को समर्पित है। 'पाथ्स ऑफ ब्लैसिंगस" नामक उनकी पुस्तक में उनकी यात्रा टिप्पणियों 'रिफलैक्शनस इन सिक्किम' से कुछ अंश शामिल किए गए हैं। (एन. के. रेरिख, 'पुटि ब्लागोस्लोविनिया', रिगा, 1924) खोज यात्राओं की कुछ उपलब्धियों का विश्लेषण यूरी रेरिख ने अपनी पुस्तक 'तिब्रतन आर्ट' में भी किया है।

भारतवर्ष में दस मास तक रहने के पश्चात्, जिनमें से नौ मास सिक्किम में बिताए, रेरिख अचानक यूरोप और अमेरिका के लिए निकल पड़े। भारत में पहुंचने तथा यहां पर कुछ मास व्यतीत करने से रेरिख की दूरगामी योजनाएं समाप्त होने वाली नहीं थीं।

रेरिख के बारे में और अधिक जानकारी प्राप्त करने के लिए हमें इस शताब्दी के एक और मानवतावादी रोमां रोलां की ओर मुड़ना होगा जो रेरिख की ही भांति भारतवर्ष से बहुत प्रभावित थे। उन्होंने लिखा है, "मेरी राय में रूसी क्रान्ति और नए विशाल जगत् का निर्माण जो क्रान्ति के दौरान संघर्ष और कलह के वातावरण में हो रहा था, बाद की इन परिस्थितियों में भी नहीं रुका। भारतीय विचारधारा को मास्को की विचारधारा के साथ मिलाने का ऐसा आश्चर्यजनक कार्य मैंने अपने लिए खड़ा कर दिया है मानो कि आग और पानी को मिलाना हो। मैं सामाजिक तथा धार्मिक शिक्षा को, सिद्धान्तों में ही नहीं, बल्कि उसकी व्यापक परिकल्पना के रूप में सबसे अधिक शक्तिशाली मानता हूं जो कि मानवता को दिशा प्रदान करती है। यही कारण है कि मैं सोवियत सिद्धान्तों तथा गांधीवादी भारतीय सिद्धान्तों को दो

बड़े बचावकारी प्रयोगों के रूप में जान पाया हूं। गांधी स्वयं भी अपने सिद्धान्तों के बारे में ऐसा मानते हैं। यही मात्र ऐसे प्रयोग हैं जो इस विध्वंस से छुटकारा दिला सकने में सक्षम हैं, जिसका आज मानव को सामना करना पड़ रहा है" (रोमां रोलां-कलैक्शन ऑफ वर्कस, मास्को, 1958)

इतिहास के गहन ज्ञान की मदद से रेरिख इस बात को स्पष्ट रूप से अनुभव करने लगे कि एक नया जगत उभर रहा है और कठोर उपनिवेशवाद का अन्त होने जा रहा है। रोमां रोलां और रेरिख दो विद्वान थे जो उस समय की उग्र घटनाओं से भिन्न-भिन्न रूप में प्रभाभित हुए। रेरिख ने हमारे काल के दो मुख्य ऐतिहासिक आन्दोलन : रूप में क्रान्तिकारी परिवर्तन तथा एशियाई जनता के विमुक्ति आंदोलन में गहरी रुचि ली। रेरिख की गतिविधियां वैज्ञानिक, कलात्मक तथा सांस्कृतिक क्षेत्रों तक ही सीमित थीं परन्तु वे राजनीति की जटिलताओं का भली-भांति बोध रखते थे। उनकी करनी और कथनी, संगति और स्पष्टता के लिए प्रसिद्ध थी। इससे स्पष्ट हो जाता है कि उनकी राजनैतिक सहानुभूति किस ओर है और किसी के मस्तिष्क में कोई सन्देह नहीं रहता।

सितम्बर, 1924 में वे भारत से फ्रांस तथा अमेरिका गए। वापसी यात्रा पर वे बर्लिन, कैरो और कोलम्बो गए। बर्लिन में वे सोवियत राजदूत से मिले। एस० जारन्तिस्की, त्राफीमोवा, रूट टुवार्डस मदरलैण्ड, 'मेजदूनरोदनाया झिज़न', इन्टरनेशनल लाईफ, मास्को, 1965, नं० 1)

एक वैज्ञानिक और चित्रकार के रूप में रेरिख की प्रतिष्ठा ही थी जिसके बल पर वें अमेरिकन झण्डे तले और अमेरिकन वैज्ञानिकों के सहयोग से वैज्ञानिक खोज यात्राएं कर पाये।

अन्त में उनका स्वप्न साकार हुआ और वे, उनकी पत्नी येलेना तथा उनका पुत्र यूरी मध्य एशिया की खोजयात्रा आरम्भ करने के लिए भारत चले गए। इस खोजयात्रा के लिए वित्तीय प्रबन्ध रेरिख संग्रहालय न्यूयॉर्क द्वारा किया गया।

मार्च, 1925 में वे कश्मीर की खोज यात्रा पर चल दिए, जहां अगली यात्राओं को तय किया गया और अगस्त में मध्य एशिया के पश्चिमी भाग में गए और लगभग दो मास लद्दाख में व्यतीत किए। मई, 1926 में ये यात्री खोसिऊन में सीमान्त चौकी पर पहुंचे और यू० एस० एस० आर० की सीमा पार कर गए। 1926 के ग्रीष्म के दौरान अभियान दल ने पहले अलतई तथा बाद में मंगोलिया में कार्य किया।

13 अप्रैल, 1927 को जैसे ही काफिले का मार्ग यात्रा करने योग्य हो गया, अभियान दल ने अपनी आगामी यात्रा आरम्भ कर दी। अगस्त में उन्होंने सैन्ट्रल रसैडम को पार किया। यहां पर तिब्बत का पठार उनके सामने था जो एशिया के सबसे ठण्डे स्थानों में गिना जाता है। रेरिख ने मार्ग के इस हिस्से को, जो उन्हें सबसे मुश्किल लगा, अधिक ठण्ड हो जाने से पूर्व यथाशीघ्र तय करने का निश्चय किया। तथापि उनकी यह योजना सहसा गड़बड़ा गई। 20 सितम्बर को अचानक बिना किसी सूचना या स्पष्टीकरण के तिब्बती सेना ने अभियान दल को एक लम्बे अर्से तक चुनारकन में ठहरने के लिए बलपूर्वक मजबूर कर दिया।

1969 के अपने दिल्ली ठहराव के दौरान लेखक ने रेरिख की मध्य एशिया तथा चीन की खोजयात्राओं से सम्बिन्धित दस्तावेजों की फाईल को खोज निकाला। भारतीय राष्ट्रीय अभिलेखागार दिल्ली में एक मोटी फाईल के अन्दर सुरक्षित रखे गए ये दस्तावेज वर्ष 1923-

1932 की अवधि के हैं। (भारतीय राष्ट्रीय अभिलेखागार, विदेश एवं राजनैतिक विभाग, फाईल नं० 331-2-एक्स, 1927) ये ब्रिटिश औपनिवेशिक प्रशासन द्वारा प्रेरित अभूतपूर्व सोवियत विरोधी हिस्टीरिया का काल था। भारत में रेरिख के प्रवेश से उपनिवेशवादियों में एक गम्भीर चिन्ता उत्पन्न हो गई जो बाद में कार्रवाई में तबदील हो गई।

ब्रिटिश औपनिवेशिक प्रशासन ने बहुत पहले मई, 1925 में एन० के० रेरिख के नेतृत्व में अभियान दल को लद्दाख, उत्तरी भारत और तिब्बत का भ्रमण करने की अनुमति दे दी थी। तथापि इस अभियान पर गुप्त रूप से निगरानी रखी गई।

1926 के शीतकाल तक तो भारत में ब्रिटिश गोपनीय सेवाओं, उत्तरी भारत के जिलों तथा फिर चीनी तुर्कीस्तान में एन० के० रेरिख के अभियान से सम्बन्धित गतिविधियों के बारे में मात्र छुट-पुट रिपोर्टें ही प्राप्त होती रहीं और तत्पश्चात् अभियान दल अचानक सबके ध्यान का केन्द्र बन गया।

हुआ यह कि उस समय दिल्ली में गुप्तचर विभाग में ये रिपोर्टें तक आने लगीं कि रेरिख अभी तक अपने आपको रूसी मानता है, उसने अपना रूसी पासपोर्ट रखा हुआ है और यहां तक कि वह अपनी मातृभूमि, सोवियत यूनियन के प्रति अपनी सहानुभूति को व्यक्त करने में भी नहीं हिचकिचाता।

इस 'खोज' से उपनिवेश के शासक इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि रेरिख एक 'कॉमिन्टरन एजेण्ट' है और वह सम्भवतः 'बॉल्शविक गुप्तचर' है।

तब तक अभियान दल ने खोतन और केशगढ़ क्षेत्रों का सर्वेक्षण कर लिया था और वे ऊरूमची के लिए निकल पड़े थे, जहां वे 11 अप्रैल, 1926 को पहुंचे तथा अपनी योजना के अनुसार यू० एस० एस० आर० की ओर चल पड़े।

13 जून, 1926 को रेरिख परिवार मास्को में था जहां सोवियत गवर्नमेंट पीपल्ज़ कॉमिशर्ज़ के सदस्यों जी० वी० चाईचरिन तथा ए० वी० लुनाचर्स्की, जो स्वयं भी विख्यात विद्वान थे, ने उनका हार्दिक अभिवादन किया। अभियान दल ने उस वर्ष का अगस्त मास अल्ताई में गुज़ारा जहां रेरिख ने बड़ी मात्रा में लोगों के देशान्तरण सम्बन्धी अपनी परिकल्पना की पुष्टि पाई। सितम्बर तक यात्री अलन-बतूर पहुंच गए।

शीघ्र ही रेरिख की सोवियत यूनियन की यात्रा का पता ब्रिटिश गुप्तचर विभाग को लग गया। केशगढ़ के ब्रिटिश वाणिज्य दूत मेजर गिल्लन ने इस सम्बन्ध में रिपोर्ट तैयार की। इस रिपोर्ट ने भारत और लन्दन में औपनिवेशिक प्रशासन को इस प्रकार सावधान कर दिया कि न केवल गुप्तचर विभाग बल्कि ग्रेट ब्रिटेन का विदेश कार्यालय और भारतवर्ष में सारा औपनिवेशिक प्रशासन इससे बड़ा चिन्तित हो गया। जैसा कि दस्तावेज़ों से स्पष्ट होता है, अभियान दल द्वारा झेली गई सभी कठिनाईयों के लिए ब्रिटिश औपनिवेशिक सरकार ही जिम्मेदार थी। वास्तव में ब्रिटिश राज के उच्च अधिकारियों के निर्देशों पर ही तिब्बत सरकार ने अभियान दल को रोका था और कुछ एक को छोड़कर अभियान दल के सदस्य मात्र संयोग से ही अपनी जान बचा पाए।

मई मास के मध्य में गंगटोक के ब्रिटिश एजेंट लै० कर्नल एफ० एम० बैली ने रिपोर्ट कि कि रेरिख का दल सिक्किम की ओर बढ़ रहा है और साथ ही उनकी तारों की संकेताक्षरों द्वारा प्रसारित किया और यह सिफारिश की कि अभियान दल की सारी डाक जब्त कर लेनी

चाहिए।

इस कार्रवाई की वजह रेरिख द्वारा यू० एस० ए० में रेरिख संग्रहालय के प्रतिनिधियों को भेजे गए तार पढ़ने से पर्याप्त रूप से स्पष्ट हो जाती है—"मध्य एशिया की महत्वपूर्ण शोध यात्रा पूरी कर ली गई है। बहुत-सी वैज्ञानिक तथा कला सम्बन्धी सामग्री उपलब्ध कर ली गई है। कुछ पेंटिंग्ज़ पहले ही न्यूयॉर्क भेज दी गई हैं। मैं आशा करता हूं कि अन्तिम खेप जो मंगोलिया से भेजी गई है, सही हालत में आपको मिल गई होगी। बौद्ध धर्म की स्थिति पर बहुत-सी लेख टिप्पणियां तैयार की गई हैं।"

"अभियान कार्य 1924 में सिक्किम से आरम्भ किया गया और पंजाब, कश्मीर, लद्दाख, कराकोरम, खोतन, केशगढ़, करशाहर, उरूमची, ईतैश नदी, अल्ताई पर्वतों, ओयरत जिला, मंगोलिया, मध्य गोबी, मानसू, त्सैडम और तिब्बत होते हुए आगे बढ़ा। खोतन और लाह्‌सा को छोड़कर हर स्थान पर हमारा हार्दिक स्वागत हुआ। तिब्बती क्षेत्र में सशस्त्र दस्यु दल ने हम पर हमला किया, परन्तु हमारे बढ़िया अस्त्रों ने खून-खराबा नहीं होने दिया। हमारे पास तिब्बत का पासपोर्ट होने के बावजूद भी 6 अक्तूबर को अभियान दल को मागचू के उत्तर में दो दिनों के लिए जबरदस्ती रोका गया। अभियान दल को समुद्र तल से 15,000 फुट की ऊंचाई पर जहां तापमान शून्य से 40 डिग्री नीचे था, गर्मियों में प्रयोग किए जाने वाले टैंटों में पांच मास तक अमानवीय निर्दयता से रोके रखा गया। उन्हें भोजन और ईंधन की कमी का भी शिकार होना पड़ा।"

"बर्यात-मंगोल और तिब्बत के पांच आदमियों तथा 90 पशुओं ने उनके तिब्बत वास के दौरान अपनी जानें गंवाई। प्राधिकारियों के आदेश से लाह्सा सरकार, कलकत्ता में अमेरिकी वाणिज्यदूत तथा ब्रिटिश प्रशासन को सम्बोधित सभी पत्र रोक दिए गए। अभियान दल के सदस्यों को स्थानीय जनता से खाद्य सामग्री खरीदने से भी वंचित रखा गया। हमारे पास धन और औषधियां समाप्त हो गई थीं। अभियान दल की तीन महिला सदस्यों, जिनके पास हृदय रोग से पीड़ित होने सम्बन्धी चिकित्सा प्रमाण-पत्र भी थे, का भी ध्यान नहीं रखा गया। बड़ी मुश्किल से 4 मार्च को दल द्वारा दक्षिण की ओर प्रस्थान किए जाने की अनुमति प्रदान की गई। चार वर्षों की इस यात्रा के बड़े रूचिकर परिणाम प्राप्त हुए हैं।

"इसे प्रेस को सौंप दें···

—मई 16, निकोलाई रेरिख

अन्त में कुछ हिचकाचाहट सहित भारत के वायसराय ने रेरिख के पत्रों तथा तारों को सम्बन्धित प्रेषितियों को भेजने की अनुमति प्रदान कर दी। उन्होंने लिखा कि यह आवश्यक था कि जब तक हो सके तिब्बती सरकार द्वारा अभियान दल के साथ किए गए अमानवीय व्यवहार में ब्रिटिश सरकार की भूमिका के राज़ को छिपाये रखा जाए। इसीलिए 24 मई, 1928 को जब रेरिख का अभियान दल गंगटोक पहुंचा तो उसे विश्राम हेतु दार्जिलिंग जाने की अनुमति तुरन्त दे दी गई।

रेरिख ने 1928 के ग्रीष्म की अपनी डायरी में लिखा है, "अभियान दल द्वारा एकत्रित की गई सभी सामग्री को सुव्यवस्थित ढंग से इकट्ठा रखा जाए, इसके लिए सम्भवतः पर्याप्त समय अपेक्षित होगा।"

परन्तु रेरिख की विश्राम करने तथा एकत्रित सामग्री के अध्ययन करने की योजनाएं सिरे नहीं चढ़ीं।

भारत पहुंचने पर पहले दिन से ही रेरिख परिवार को पुलिस की गुप्त निगरानी में रखा गया। गृह विभाग ने निर्देश जारी कर दिए कि रेरिख परिवार की समस्त गतिविधियों पर नज़र रखी जाए।

शरद कैम्प की कठिन परिस्थितियों के परिणाम स्वरूप, सितम्बर 1928 में श्रीमती रेरिख के स्वास्थ्य में भारी गिरावट आने पर रेरिख ने भारत के वायसराय से उनके भारत में ठहराव में विस्तार करने का निवेदन किया। इसी समय वह अभिमान दल द्वारा एकत्रित सामग्री के अध्ययन को भी जारी रखना चाहते थे और उन्होंने हिमालयन अनुसंधान संस्थान स्थापित करने का प्रश्न भी उठाया।

एन० के० रेरिख और उनके सुपुत्र 22 मई, 1929 को भारत छोड़ कर जनेवा चले गए। वे यूरोपीय और अमेरिकी संस्थाओं के साथ सम्पर्क स्थापित करने के लिए यूरोप और संयुक्त राज्य अमेरिका चले गए। पर उनके दिमाग में यह बात नहीं आई कि औपनिवेशिक प्रशासन उन्हें भारत का वीज़ा लौटाने से इनकार कर देगा, जहां पर उनकी विश्वसनीय साथी तथा इस सारे उद्यम में उनकी समर्थक यलैना रेरिख थी, जो पहली रूसी महिला थी जिसने मध्य एशिया का यह दुर्गम रास्ता तय किया था। उनका स्वास्थ्य इतना बिगड़ गया था कि डॉक्टरों की राय थी कि उनके लिए यात्रा घातक सिद्ध हो सकती है।

1929 के अन्तिम छः मास तक 1930 के पूरे वर्ष के दौरान रेरिख को उनकी पत्नी से मिलने भारत जाने की अनुमति देने के सम्बन्ध में लन्दन और वाशिंगटन के मध्य पत्र व्यवहार चलता रहा। ब्रिटिश सरकार ने रेरिख के सभी निवेदनों, याचिकाओं तथा ज्ञापन-पत्रों को अस्वीकार करके भारत को उनकी गतिविधियों के दायरे से हमेशा के लिए अलग करने का प्रयत्न किया। डी० पेटरी, जो भारत में गोपनीय सेवा के अध्यक्ष थे, ने स्पष्ट रूप से लन्दन को लिखा कि रेरिख जैसे सन्देहास्पद व्यक्तियों पर गुप्त रूप से निगरानी रखने के अतिरिक्त कार्य के अलावा उस समय पुलिस की अपनी ही बहुत सी परेशानियां थीं।

रेरिख बहुत निराश थे। औपनिवेशिक अधिकारी तंत्र के सामने अपने आपको निस्सहाय समझने लगे, जो उनके वैज्ञानिक तथा कलात्मक व्यवसाय में आड़े आया और एक वर्ष से भी अधिक समय तक उन्हें उनकी पत्नी से नहीं मिलने दिया।

उनकी अथक गतिविधियों तथा धैर्य की प्रशंसा करनी होगी। इसी दौरान उन्होंने युद्धों से सांस्कृतिक मूल्यों के बर्बर विध्वंस के विरोध में एक अनुबन्ध पत्र निष्पादित करने के लिए बड़े ज़ोरों से एक अभिमान चलाया। रेरिख कई वर्षों से अपने जीवन के अंत तक एक अन्तर्राष्ट्रीय समझौता किए जाने की आवश्यकता पर बल देते रहे, जिसके अन्तर्गत विभिन्न देशों में युद्ध के दौरान कला तथा संस्कृति के विध्वंस को रोकने का प्रावधान था। परन्तु उनकी मृत्यु के कुछ वर्षों पश्चात् ही सोवियत संघ सहित सभी 39 देशों ने रेरिख के प्रारूप के आधार पर समझौते का अनुसमर्थन किया।

19 दिसम्बर, 1930 को विदेश कार्यालय ने, इस शर्त पर कि रेरिख तीन मास के बाद वहां से चले जायेंगे उन्हें तथा उनके पुत्र को ब्रिटिश इण्डिया में प्रवेश करने का वीज़ा प्रदान करने की कृपा कर दी। परन्तु तीन मास व्यतीत हो गए और ब्रिटिश प्राधिकारी उन्हें देश से

निकालने कि हिम्मत नहीं कर पाए। रेरिख परिवार कूल्लू में बस गया और अब वे भारत, इसके इतिहास, संस्कृति, कला, वनस्पति और जीव-जन्तुओं के और अधिक गहन अध्ययन आरंभ करने में समर्थ थे। उनके द्वारा स्थापित हिमालय संस्थान ने उत्कृष्ट भारतीय वैज्ञानिकों, विद्वानों, कलाकारों, लेखकों और सामान्य जनों से सम्पर्क स्थापित कर लिया। बाद में निकोलाई रेरिख ने लिखा है, "1923 से यात्रा आरम्भ करते हुए हमने भारत में सभी मुख्य रूचिकर स्थानों का भ्रमण कर लिया है"'और जहां कहीं भी हम गए, हमारा हार्दिक स्वागत हुआ। हमने न केवल टैगोर परिवार के साथ अपितु भारतीय दार्शनिक विचारधारा के अनेक प्रतिनिधियों के साथ भी अपने मैत्री सम्बन्ध स्थापित किए। हमारा अनागरिक धमपाल, रामान्दन चटर्जी, सुनीति कुमार चटर्जी और सी० वी० रमन के साथ पत्राचार चलता रहा। असित कुमार हलदर और बिरेश्वर जैसे कलाकारों तथा गांगुली, महता, बसु, टंडन, भट्टाचार्य, चतुर्वेदी, रावल, कुंचीतापट्टम थम्पी और श्रीवर्धन जैसे साहित्य लेखकों के साथ हमारी मित्रता हो गई'''भारत ने हमारे संस्थान का सस्नेह स्वागत किया।"

1930 में कुल्लू लौटने पर रेरिख ने उरूस्वती संस्थान के अनुसंधान कार्य की योजना के कार्य को पूरा करना आरम्भ कर दिया।

उरूस्वती संस्थान की गतिविधियां विश्व भर के विद्वानों के सहयोग की उपज बन गई। निकोलाई रेरिख ने एशिया, यूरोप और अमेरिका की अनेक महान संस्थाओं को वैज्ञानिक क्षेत्र में सहयोग तथा सूचना के आदान-प्रदान हेतु अपनी ओर आकृष्ट किया। चित्रकार के बड़े पुत्र यूरी रेरिख ने इस संस्थान के निदेशक के रूप में कार्यभार सम्भाला। उन्होंने जातीय-भाषा वैज्ञानिक अनुसंधान तथा पुरातात्विक सर्वेक्षण का कार्य किया। एशिया के लोगों द्वारा भाषा शास्त्र के क्षेत्र में महत्वपूर्ण कार्य किया जा रहा था। दुर्लभ कृतियों को एकत्रित कर यूरोपीय भाषाओं में अनूदित किया गया और ऐसे प्राचीन तर्कशास्त्रों का अध्ययन किया गया जिनकी बहुत कम लोगों को जानकारी थी।

रेरिख के छोटे पुत्र, स्वेतोस्लाव ने कला का अध्ययन किया और संस्थान के वनस्पति-विज्ञान विभाग का नेतृत्व किया। उन्होंने तिब्बती औषध-कोश के क्षेत्र में भी अनुसंधान किया।

वानस्पतिक तथा प्राणी-विज्ञान के क्षेत्र में उपलब्धियों का मिशिगन विश्वविद्यालय, पंजाब विश्वविद्यालय, प्राकृतिक इतिहास संग्रहालय पेरिस, हार्वर्ड विश्वविद्यालय, यू० एस० एस० आर० विज्ञान अकादमी के ऑल-यूनियन इन्स्टीच्यूट ऑफ बॉटनी के साथ आदान-प्रदान किया गया।

यहां तक कि सोवियत संघ के अग्रवर्ती वनस्पतिज्ञ, एन० आई० वेविलोव भी अपने अद्भुत संचयन को और अधिक समृद्ध बनाने के उद्देश्य से वैज्ञानिक जानकारी तथा विभिन्न नमूनों के सम्बन्ध में उरूस्वती संस्थान की सहायता लिए बिना नहीं रह सके। कैंसर से जूझने के लिए संस्थान में एक जीव-रसायन प्रयोगशाला खोली गई। उच्च स्थानीय परिस्थितियों में ब्रह्माण्ड किरणों पर अध्ययन किए गए और कुल्लू घाटी तथा उससे भी आगे—लाहौल, बुशहर कांगड़ा, लाहौर, लद्दाख, जकसर, स्पिति, रूपशू तथा चीन के उत्तर-पूर्वी क्षेत्रों (आन्तरीक मंगोलिया) की भी शोधयात्राएं की गईं। इन शोध यात्राओं में उपलब्ध नई सामाग्री से संस्थान क्रमबद्ध रूप से समृद्ध होता गया।

संस्थान की गहन तथा बहुसर्जक गतिविधियों ने पश्चिम के अनेक वैज्ञानिकों का ध्यान

आकृष्ट किया। यह सिलसिला द्वितीय विश्व महायुद्ध के अन्त तक ज़ारी रहा। विश्वमहायुद्ध के अचानक छिड़ जाने से अन्तर्राष्ट्रीय सम्पर्क टूट गए जिस पर संस्थान की कार्य प्रणाली निर्भर थी। ये सम्पर्क लगभग समाप्त ही हो गए थे। निकोलाई रेरिख ने 1940 में अपनी डायरी में लिखा है, 'पहले हमारा सम्पर्क व्यीना से टूटा प्रतीक हुआ, फिर पैरागुए से। अब वर्सा से।··· धीरे-धीरे बाल्टिक गणराज्य से भी हमें सम्पर्क साधना मुश्किल हो गया। स्वीडन, डेनमार्क और नॉर्वे के नाम भी सूची से हट गए। ब्रज (Brugge) मौन हो गया। यही स्थिति बेलग्रेड, ज़गरेब इटली और पेरिस के सम्बन्ध में हो गई थी। अमेरिका बहुत दूर प्रतीत होता था और यदि कभी कोई पत्र आदि पहुंचता भी तो उसे समुद्रों को लांघने के पश्चात् काफी समय तक सेंसर वालों के यहां रुकना पड़ता। दूर-पूर्व में भी मौन है। यहां तक कि स्विट्ज़रलैण्ड भी एक अधिकृत देश प्रतीत होता है। और यहां तक कि अपनी मातृभूमि से पत्र-व्यवहार भी सम्भव नहीं है और वहां से कुछ जड़ी-बूटियों के बारे में जानकारी चाही गई थी। न जाने कितने पत्र गुम हो गए।···और अन्त में यह बात भी सामने आई कि भारत में भी सेंसर होता है।···परि-स्थितियों ने किस प्रकार काम को बिगाड़कर रख दिया, यह देख कर दुःख होता है। निकट भविष्य में परिस्थितियों में किसी प्रकार के सुधार होने की आशा भी नहीं। कुछ नया होगा, परन्तु कब? '(डायरी के पन्ने, लेख—'ऑन द आईलैंड')।

अनवरत वैज्ञानिक अनुसंधान कार्य से कलाकार रेरिख की सृजनात्मक गतिविधियों पर कोई प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ा। यद्यपि उनके चित्रों में भारतीय विषय वस्तु का प्रवेश 1905 से आरंभ हुआ तथापि भारत में उनके जीवन ने 1920 के आरम्भिक वर्षों से न केवल भारतीय विषयक परिवर्तन अपितु रेरिख की पूरी कला को प्रभावित किया। एशिया में प्रकृति के वैभव, विशेषकर हिमालयी क्षेत्र को उन्होंने अपनी आन्तरिक आवश्यकताओं के प्रति अनुकूल महसूस किया।

निकोलाई रेरिख की कला को भारत का योगदान, कला-विद्वानों के लिए एक अनुसंधान का विषय है। यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि भारत के बिना रेरिख की अद्वितीय कला शैली का विकास नहीं हो पाता जिसका उसने लम्बी अवधि तक बड़ी कर्मठता से विकास किया और विचारक रेरिख चित्रकार रेरिख नहीं बन पाता।

बृहद् वैज्ञानिक गतिविधियां, चित्रकार की प्रसिद्ध विकासशील मानवीय दृष्टि तथा स्वतन्त्रता सेनानियों ने रेरिख को भारतीय समाज के सान्निध्य में लाया और देश में उनके लिए लोकप्रियता अर्जित की। विभिन्न वैज्ञानिक तथा कला सम्बन्धी सम्मेलनों के आयोजक सुदूर नगर (गांव) में बसे रेरिख को निमंत्रण तथा अभिवादन भेजना अपना कर्त्तव्य समझते थे। अनेक भारतीय वैज्ञानिकों, कलाकारों, लेखकों व समाज जनों ने रेरिख के साथ व्यक्तिगत सम्पर्क स्थापित कर लिया था और सहयोग का आदान-प्रदान किया करते थे। इस महान रूसी कला-कार के प्रति भारतीय प्रेस मैत्रीपूर्ण दृष्टिकोण रखता था।

रेरिख के भारतीय मित्रों और भारत में उनके प्रकाशनों की फैहरिस्त बहुत लम्बी होगी।

उनकी पुस्तक 'जॉय ऑफ आर्ट' जिसमें प्राक्कथन एस० राधाकृष्णन ने लिखा था; 'वन्डरफुल यूनिटि' जिसमें परिचय बी० गार्गी तथा प्राक्कथन रवीन्द्रनाथ टैगोर ने लिखा; तथा "हिमालय—दि साइन ऑफ लाईट,' के अनेक संस्करण निकाले गये।

युद्ध के दौरान कलात्मक मूल्यों को सुरक्षित रखने सम्बन्धी रेरिख के विचारों तथा गतिविधियों का भारत ने हृदय से समर्थन किया। न्यू-यॉर्क में समिति ने दिसम्बर, 1945 में रेरिख 'पैक्ट एण्ड पीस बैनर' की युद्धोत्तर गतिविधियों को पुनः आरम्भ कर दिया। 1946 में अखिल भारतीय सांस्कृतिक एकीकरण सम्मेलन ने पैक्ट का समर्थन किया और 1948 में जवाहरलाल नेहरू के नेतृत्व में भारत सरकार ने इस पैक्ट को माननीय करार दिया।

जवाहरलाल ने भारत में रेरिख की बहुमुखी गतिविधियों को बहुत सराहा और व्यक्तिगत रूप में उनसे मिले। वे 1942 में रेरिख के पास नग्गर गए। रेरिख ने अपनी स्मृतियों में लिखा है, "नेहरू अपनी पुत्री सहित एक सप्ताह तक यहां ठहरे। वह एक बहुत अच्छे और अद्भुत नेता हैं। उनके प्रति आकर्षण की भावना उत्पन्न होती है। वे दूसरों से प्रतिदिन उत्साहित करने वाली बातें किया करते हैं। निश्चय ही वे बहुत थके हुए होंगे। कई बार तो वह प्रातः चार बजे तक कार्य करते रहते। स्वेतोस्लेव ने उनका एक बहुत अच्छा चित्र बनाया है। यह चित्र 10 फुट ऊंचा, 6 फुट चौड़ा होगा जिसकी पृष्ठभूमि में कांग्रेस का झंडा है। भारत-सोवियत सांस्कृतिक सहयोग के बारे में कुछ बातचीत भी हुई। उपयोगी सम्पर्क स्थापित किए जाने संबंधी विचार करने के लिए यह अच्छा समय है। (रेरिख एन० के०, ओक्ट्याबर, 1958, नं 10)

इस प्रकार भारतवर्ष के स्वतन्त्र होने से पूर्व ही सरकार के होने वाले प्रधान तथा रूसी कलाकार ने भारत सोवियत सांस्कृतिक सहयोग की योजना बना ली।

हिटलेरियन जर्मन द्वारा सोवियत संघ पर आक्रमण किए जाने के फलस्वरूप निकट भविष्य में रेरिख के घर लौटने की उम्मीदों पर पानी फिर गया। तथापि पहली बार बदली हुई राजनैतिक परिस्थितियों में उन्होंने अपनी राजनैतिक सहानुभूति को और अधिक स्पष्ट रूप में व्यक्त किया और अपनी देशभक्ति की भावनाओं के अनुरूप कार्य किया। भारत में निकोलाई रेरिख तथा स्वेतोस्लेव रेरिख के चित्रों का विक्रय किया गया और प्रदर्शनियां लगाई गईं और इस प्रकार रशियन रैड क्रिसैन्ट सोसायटी और रैड आर्मी के लिए धन इकट्ठा किया गया। जैसे ही रूसी मोर्चे पर सैनिक कार्यवाई आरम्भ हुई, यूरीरेरिख ने, जिन्हें कुछ सैनिक प्रशिक्षण भी प्राप्त था, आधिकारिक रूप से रैड आर्मी के पद संभालने की तत्परता व्यक्त की। रेडियो पर बोलते हुए स्वेतोस्लेव रेरिख ने हिटलेरियन जर्मनी को रौंद देने के निर्णायक महत्व पर विशेष बल दिया। रेरिख के लेखों और याचिकाओं में पत्रकारिक छाप तथा देशभक्ति का बड़ा जोश था।

युद्ध के मोर्चे पर अभी युद्ध ज़ारी ही था कि निकोलाई रेरिख ने भारत और यू० एस० एस० आर० के मध्य सांस्कृतिक सहयोग की अपनी योजना को पूरा करने की बात उठाई। अप्रैल, 1944 में उन्होंने लिखा, 'मैंने युद्ध से पहले ही शूसेव और समिति को सांस्कृतिक सम्बन्धों के बारे में लिखा था और भारत में रूसी प्रदर्शनी लगाने का अनुरोध भी किया था। रूसी युद्ध विषयक एक प्रदर्शनी का यहाँ पर आयोजन किया भी गया परन्तु अपेक्षित यह था कि यहां पर रूस की कला की एक साधारण प्रदर्शनी का आयोजन किया जाता। यद्यपि कलाकृतियों को लाना मुश्किल होता, तथापि मात्र इसी से हमारे कलाकारों की उपलब्धियों का परिचय हो जाता। इसी प्रकार की प्रदर्शनी का तहेदिल से स्वागत होता। परन्तु वे कहते—अभी नहीं, युद्ध के बाद किसी और समय। और अभी क्यों नहीं? वनस्पतिविद् और एटोमोलोजिस्ट भारत आते रहते हैं। पर इसके साथ ही सांस्कृतिक सम्पर्क भी कुछ कम महत्व नहीं रखते।" (डायरी के पन्ने)

युद्ध के तुरन्त पश्चात रेरिख ने सोवियत संघ वापस जाने के लिए कार्यवाही आरम्भ की।

आरम्भ में सोवियत संघ के लिए भारत से डाक अमेरिका होते हुए जाती थी और इसमें तीन मास का समय लग गया। भारत और सोवियत संघ के बीच वायुयान से आवागमन स्थापित होने पर अपनी मातृभूमि के साथ रेरिख के सम्पर्क युद्ध से पहले के मुकाबले अधिक सघन हो गए। तथापि जुलाई 1947 में कलाकार का स्वास्थ्य खराब हो गया। वह लगभग तीन मास तक बिस्तर में पड़े रहे। उसके बाद कुछ समय के लिए उनके स्वास्थ्य में सुधार आया और 13 दिसम्बर, 1947 को अचानक हृदय की गति धीमी पड़ जाने के कारण निकोलाई रेरिख की सांसारिक यात्रा समाप्त हो गई।

तीन दिनों के बाद हिमालय की तराई में, उनके घर के सामने कलाकार की चिता जलाई गई। फिर शीघ्र ही वहाँ पर एक शिला स्थापित की गई जिस पर खुदवाया गया, "भारत के महान मित्र महर्षि निकोलाई रेरिख के पार्थिव शरीर का 30 माघ, विक्रमी सम्वत् 2004 (15 दिसम्बर, 1947) को यहां अंतिम संस्कार किया गया। ओम् राम।

1957 में एन०के० रेरिख की मृत्यु के दस वर्ष पश्चात्, उनके बड़े पुत्र यूरी रेरिख स्थाई निवास हेतु सोवियत संघ लौट गए। वह लगभग 400 कन्वास अपने साथ ले गए, जिन्हें उनके रचनाकार ने अपने जीवनकाल में ही अपनी मातृभूमि ले जाने हेतु चयनित तथा पेटियों में पैक कर रखा था। इन चित्रों को मॉस्को तथा यू० एस० एस० आर० के अन्य शहरों में प्रदर्शित करने से रेरिख अपनी मातृभूमि में फिर से सजीव हो गए। उनकी मूल, विशिष्ट कला तथा उनकी समग्र बहुमुखी गतिविधियों ने लोगों का अपेक्षाकृत ध्यान आकृष्ट किया। गत कुछ वर्षों में 'एन० के० रेरिख, स्मृतियों के पन्ने', 'एडवन्चर्स इन द माउंटेनस', (बुक-1, एम० 1961), वी० पी० नाईजेबा, एन० के रेरिख (मोनोग्राफ), एल०, 1963, 'निकोलाई रेरिख एलबम ऑफ रिप्रोडक्शनस, परिचयात्मक लेख ए० यूफेरोवा, एम० 1970, प्रकाशन 'डायरी के पन्ने' एन० रेरिख 'प्रोमेतई' 'हिस्टोरिक बायोग्राफिक अलमानेक, वॉल्यम-8 एम० 1971, पी० एफ० बेलिनन, वी० पी० नाईजेबा, 'रेरिख', एम 1973 तथा अन्य सहित कुछ मोनोग्राफ, एलम्बस तथा रेरिख के सम्बन्ध में कुछ अन्य अनुसंधान कार्यों को प्रकाशित किया गया है।" आगामी अनुसंधान कार्य हेतु 'रेरिख और भारत' विषय की विशेष आवश्यकता है।

[अंग्रेजी से अनुवाद : टी० चौहान]

निकोलाई रेरिख : लेखन के अंश

वीरोचित यथार्थवाद

···आप मेरी कला को वीरोचित यथार्थवाद से परिभाषित कर रहे हैं। मुझे इस तरह की परिभाषा अच्छी लगती है। साहसिक कार्य सदा चुनौतीपूर्ण रहे हैं। जीवन के सारतत्व को मानने वाला सच्चा यथार्थवाद रचनाशीलता के लिए अनिवार्य है। लेकिन मुझे यथार्थवाद का विलोम ध्रुव-प्रकृतवाद-पसन्द नहीं। प्रकृति के सारतत्व को प्रेषित करने में वह असमर्थ है, रचनाशीलता से उसे कोई सरोकार नहीं, रोजमर्रा की जिन्दगी की जूठन के पीछे वह हमेशा तत्पर रहता है। दुख इस बात का है कि इतनी लम्बी अवधि तक प्रकृतवाद को यथार्थवाद से अलग करके नहीं देखा गया। पर अब यह भेद स्पष्ट हो गया है। इससे कला के भावी आंदोलनों को स्वस्थ विकास प्राप्त होगा।

सच्चा यथार्थवाद चीजों के सारतत्व को प्रतिबिम्बित करता है। सच्ची रचनाशीलता के लिए यथार्थवाद प्रस्थान बिन्दु है। अन्यथा तरह-तरह की भ्रामक अंधगलियां नई-नई प्रवृतियों को विकसित होने का अवसर नहीं देती। बिना गतिशीलता के नवीनता भी संभव नहीं। पर नव्यता स्वस्थ साहसपूर्ण और रचनात्मक होनी चाहिए।

अमूर्तता से हमें ईश्वर बचाये। अमूर्त घरों में रहा नहीं जा सकता अमूर्त भोजन से पेट नहीं भरता। अमूर्त चित्रों से सजे हुए घर हमने देखे हैं···बहुत हो लिया। मनुष्य जाति शौर्यपूर्ण कृत्य चाहती है वह संघर्ष करती है कठिनाईयां झेलती है···हृदय सौदर्न्य के गीत सुनना चाहती है। हृदय श्रम-प्रक्रिया और श्रेष्ठ की तलाश में रचनाशील रहता है।

जिन्दगी ने इतनी विराट सच्चाइयां हमारे सामने प्रस्तुत की हैं केवल सच्चे यथार्थवाद में ही उन्हें अपनी आवाज मिल सकती है। चालाकी और छलकपट से उन खतरों का निपटारा नहीं किया जा सकता जिन्होंने आज घबराई हुई मनुष्य जाति को रौंद डाला है। निकट भविष्य में मनुष्य जाति के स्वस्थ होने की आशा कम है।

संस्कृति लड़खड़ा रही है। ज्ञान की मरुभूमि पास आ रही है। अकाल का प्रेत पृथ्वी पर घूम रहा है। नफरत ने संवेदनशीलता को सुखा दिया है। संकट और नये संकट पैदा कर रहा है। मुसीबतें चिथड़े पहने घूम रही हैं। मनुष्य के निर्दयतापूर्ण कार्यों की गिनती संभव नहीं। हर तरह की महामारियां, महत्वोन्मादं और विक्षिप्तता घात लगाये बैठी है।

इस तरह की अराजकता के बीच रचनाकार वीरोचित यथार्थवाद का झण्डा उठा सकते हैं अनश्वर सौन्दर्य का आह्वान कर सकते हैं। दुखों को कम कर सकते हैं। साहस जगा सकते हैं। उल्लास के बिना सुखी जीवन संभव नहीं। सुखी जीवन के सपने तो निर्धन से भी निर्धन व्यक्ति भी देखता है। इन सपनों को मनुष्य से छीना नहीं जा सकता। हर क्षेत्र के रचनाकारो उठो, सहायता करो!...

(1944)

हमारा यह समय

संस्कृति के उत्पादों का कैसे उपयोग किया जाए—इसे भी सिखाने की जरूरत है। उन्हें जिन्दगी की ज़रूरतों का हिस्सा बनाया जाना चाहिए। कुटिल दृष्टि और अंधकारपूर्ण विवेक रखने वालों के लिए यह काम इतना आसान नहीं। इसके लिए प्रयत्न और समग्र शिक्षा की आवश्यकता है जिसे किसी विदूषक के आदेश से प्राप्त नहीं किया जा सकता। पूरी सीढ़ी चढ़नी होती है ताकि विवेक, आंखें और कान शुद्ध हो सकें। अन्यथा मनुष्य उसकी स्वर लहरियों से अछूता और अप्रभावित रहेगा।

मनुष्य जाति को संस्कृति का तारामंडल ढूंढना चाहिए और अंधकार के अहसास के बिना रोशनी लाने का विचार ही पैदा नहीं होगा।

इन प्राचीन सत्यों को विशेषकर आज दुहराने की ज़रूरत महसूस हो रही है जब अधिकांश लोग चाहे अनचाहे संस्कृति की अवहेलना करने लगे हैं। इन असहाय प्राणियों को लग रहा है कि आज संस्कृति के विषय में विचार करने का समय नहीं। किस तरह की योजनाएं हैं उनके पास जीने की? अपने दैनिक जीवन को वे किस तरह से उदात्त बनाना चाहते हैं? पर नीचता की गुलामी करने वाले हमेशा चौकन्ने रहते हैं। वे पूरी वफादारी से उन चीजों का प्रचार कर रहे हैं जिनसे मनुष्य के आत्मबल को नष्ट किया जा सके।

अब समय आ गया है कि हम विचार करें कि किस तरह से संस्कृति को जीवन का अंग बनाया जाए। जीवन को भयभीत और नष्ट किया जा चुका है। विश्वास करिये, आज जीवन के नये सिद्धान्तों पर विचार करना और उन्हें अपनी सोच का हिस्सा बनाना आसान है।

हमने पुरानी जीवन व्यवस्था को फेंक किया है और फिर भी जी रहे हैं हर जगह कुछ न कुछ रच रहे हैं। अज्ञान और अंधकार द्वारा पैदा किये भय के बावजूद केवल कला और ज्ञान हमें भय से मुक्ति दिला सकते हैं।...

(1918)

अपने एक सहयोगी से

हर कलाकृति को गीत की तरह मुक्त होना चाहिए। और जिस तरह हर गीत की अपनी लय अपना सुगठित अनुशासन होना चाहिए उसी तरह की लय और अनुशासन अपने समस्त रूपों में कला की भी होनी चाहिए। सच्चा गुरू अपने शिष्य को रूढ़ियों से मुक्त कला की विराट समझ प्रदान करता है। पुराने कला रूपों के प्रति आदर सिखाता है और नये से नये और सफल विश्वसनीय अभिव्यक्ति रूपों को खोजने के लिए प्रेरित करता है। सस्ती फार्मूलेबाजी या जिसे फ्रांसीसी लोग 'सरल सूत्रों' की संज्ञा देते हैं शिष्यों द्वारा ठुकरा दी जायेगी। सच्चा गुरू चाहेगा कि शिष्य अपने लिए विशिष्ट शैली ढूंढ निकाले न कि किसी घिसीपिटी शैली या अशिष्ट कला रूपों का मात्र अनुकरण करता रहे। ऐसे उदाहरण कम नहीं जब 'सरल सूत्रों' ने स्वस्थ प्रयासों को अवरुद्ध किया है। नये रचनाकारों का श्रम-प्रक्रिया के प्रति प्रेम रहना चाहिए इसलिए कि श्रम अविच्छिन रूप से रचनाशीलता और उत्कृष्टता से जुड़ा है।

यदि किसी ने कला-पथ को चुना है उसे यह ज्ञात होगा कि यह पथ सुगम नहीं उसमें कितने उतार-चढ़ाव हैं। कितनी तीखी चट्टानें हैं और कितनी घातक नदियां! कला को अकारण ही पावन नहीं माना जाता। उसके बिना मनुष्य जाति अपनी पशु-स्थिति से बाहर नहीं निकल पाती। असभ्य लोग अभी भी कला को विलास की वस्तु मानते हैं लेकिन विलास वस्तु की अवधारणा अपने में कुरूप है। उसमें निहित है पतन और विकृति। संसार में हो रहे पुनर्गठन के इस दौर में विलास के विनाशकारी तत्त्वों को ठुकरा देना चाहिए। श्रम को उल्लास और हर्ष, जीवन की पूर्णता और सच्चा सौन्दर्य प्रदान करने में प्रयासरत रचनात्मकता की विजय होनी चाहिए, विशेषकर युद्ध के इन दिनों में। हमें संस्कृति के समस्त रूपों की सुरक्षा के प्रति सचेत रहना चाहिए। पतन का एक कारण प्रायः यह भी होता है कि कभी-कभी मनुष्य जाति जीवन के श्रेष्ठ सिद्धान्तों का मज़ाक उड़ाने लगती है। हाल ही के आविष्कारों और खोजों के प्रति कृतज्ञ होने के बजाय मनुष्य जाति ने अपने भटकाव में इन सशक्त संभावनाओं को विनाशलीला में झोंक दिया है। पर हम इस विनाश तक ही अपने चिन्तन को सीमित नहीं रखें बल्कि इस पर विचार करें कि युवा पीढ़ी अपने हाथों किस तरह जीवन का नवनिर्माण करेगी। आओ खुश हो लें कि रचनाशीलता इन सुविचारित सफलताओं पर आधारित होगी।··· (1940)

अग्नि विद्या

···ज्ञानप्राप्ति की पहली शर्त है अध्ययन पद्धतियों से मुक्ति। मानक पद्धतियों पर आग्रह नहीं रहना चाहिए। सच्चा ज्ञान भीतर के संचयन और साहस से प्राप्त होता है। इसलिए कि ज्ञान का एक नहीं, कई रास्ते हैं। जीवन के इस तरह के आह्वान और चुनौतियों का पूरा वर्णन करने लगूं तो चिरवांछित और प्रेरणादायक पुस्तक बन आयेगी। वे सारे तथ्य जो स्कूल पाठ्य-पुस्तकों से बाहर है उनका संग्रह किया जाए। इन तथ्यों को धोखे और अनादर, आडम्बर, भय और अज्ञान से मुक्त पूरी ईमानदारी के साथ पिरोया जाए।

यह कभी ज्ञात हो ही न पाए कि वह उपयोगी ज्ञान-बीज हमें कौन देगा : भौतिक वैज्ञानिक, जैव—रसायनविद, जीववैज्ञानिक, वैद्य पुजारी या इतिहासवेता या दार्शनिक या तिब्बती लामा या ब्राह्मण-पंडित या यहूदी धर्मशास्त्री या कन्फ्यूशियस या बूढ़ी दाई या अंततः आपका वह सहयात्री जिसका न जाने क्यों नाम तक भी नहीं पूछा—पता नहीं इनमें से कौन सर्वाधिक महत्वपूर्ण योगदान देगा ? हरेक के जीवन में ऐसी चीजों की कमी नहीं जो असाधारण और प्रेरणादायक हो। आवश्यकता याद रखने की है। इन स्मृति चिह्नों में इतने श्रेष्ठ तारे चमकते हैं जो अस्थाई रूप से कहीं विस्मृति में चले गये थे। इस प्रकार अपने दैनंदिन श्रम का परित्याग किये बिना हम वर्जित चीजों की ओर नहीं बल्कि उन संभावनाओं की ओर अग्रसर होते हैं जो हमारे जीवन को आभा प्रदान करते हैं। हमारा काम ज़िद्द करने का नहीं, ज़बरदस्ती करने का नहीं। ज़बरदस्ती से कुछ भी प्राप्त नहीं किया जा सकता। पर मैं दुहराना चाहता हूं कि संभव आनंद की याद करना भी ज़रूरी है। भौतिक जगत की भाषा इस आध्यात्मिक आनन्द को व्यक्त करने में असमर्थ है।···

रवीन्द्रनाथ ठाकुर को लिखे-पत्रों के अंश—

20.4.1931

प्रिय भाई,

आपसे हुई मुलाकात के बाद बहुत समय गुज़र चुका है। पर मैं अक्षुण्ण प्रशंसा भाव के साथ आपके पूरे संसार में फैल रहे विचारों से अपने को लगातार अवगत कराता आ रहा हूं।

मेरी शुभ कामनाएं हमेशा आपके साथ रही हैं, हर जगह जहां-जहां भी आपने श्रेष्ठ संस्कृति वैभव के सुन्दर उद्यान स्थापित किये हैं। वास्तव में आज उन सब को जिनका लक्ष्य संस्कृति रहा है एकत्रित होना चाहिए और अहसास होना चाहिए कि हम सब उस एक ही नाव में सवार हैं जो मानवीय पाशविकता के तूफानी समुद्र में चल रही है।

मैं अपने हृदय की गहराई से आपके संस्कृति निर्माण विषयक विचारों को अनुभव करता हूं, ठीक उसी तरह जिस तरह आप की प्रख्यात शांति निकेतन के फूलने-फलने की हमारी शुभकामनाओं को ग्रहण करते हैं।

हिमालय अध्ययन संस्थान 'उरुस्वाति' की वार्षिक पत्रिका में आपका लेख छापने में हमें बहुत प्रसन्नता होगी। व्यक्तिगत रूप से मुझे भी शांति निकेतन की पत्रिका 'विश्व भारती' में अपना लेख प्रकाशित कराने में खुशी होगी। इस उद्देश्य से मैं आपको हिमालय अध्ययन संस्थान के विषय में कुछ पुस्तिकाएं भेज रहा हूं।

···मुझे याद नहीं पड़ रहा—मेरी कौन-सी पुस्तकें शांति निकेतन के पुस्तकालय में हैं। यदि आप मुझे यह बता सकें कि आपके यहां मेरी कौन-सी पुस्तक हैं तो मैं आपको अपनी दूसरी पुस्तकें भेजूंगा। हिमालय अध्ययन संस्थान के पुस्तकालय में आप की हर पुस्तक का स्वागत होगा।···

2. 27.12.1929

प्रिय मित्र,

आपसे अमूल्य उपहार—आपके हस्ताक्षर के साथ आपका छाया चित्र—पाकर हमें बहुत प्रसन्नता हुई है। हमारे लिए यह केवल आपकी व्यक्तिगत मित्रता का ही प्रतीक नहीं बल्कि पूरब और पश्चिम के संबंधों का भी प्रतीक है जब बिना किन्हीं पूर्वाग्रहों और घृणाभाव के हमें सौंदर्य और संस्कृति के नाम पर एक दूसरे से गले मिल सकते हैं।

हमारा यह छोटा-सा पत्र आपको नये वर्ष के बाद ही मिल सकेगा। नए वर्ष के अवसर पर अपनी शुभ कामनाएं भेज रहा हूं और कामना करता हूं कि आपकी श्रेष्ठ व्यक्ति की अध्यात्मिक छवि मानव जाति को महान सत्यों और सौंदर्य के शिखरों की ओर लम्बे समय तक ले जाने में समर्थ रहे।...

3. 15 सितम्बर 1936

प्रिय मित्र,

5 सितम्बर 1936 के समाचार पत्रों में प्रकाशित आप के आह्वान को पढ़ कर हमें हार्दिक प्रसन्नता हुई। हम प्रार्थना करते हैं कि आपका यह आह्वान दुनिया के कोने-कोने तक पहुंचे और आध्यात्मिक उत्थान, पारस्परिक समझ और सहयोग की भावना पैदा कर सके। इन सांस्कृतिक आधारों के बिना सच्चा संसार संभव नहीं। विश्व संस्कृति संघ और शांति-ध्वजा समिति की ओर से मुझे अपने पूरे हृदय से आप के शांति की रक्षा के इस सशक्त आह्वान के लिए कृतज्ञता व्यक्त करने की अनुमति दें। आपका नाम सच्चे प्रकाश स्तंभ की तरह अनेकों महत्वपूर्ण आंदोलनों का रास्ता आलोकित करता है।...
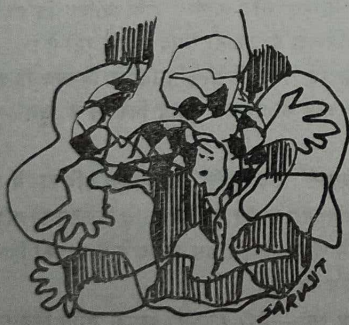
निकोलाई रेरिख की दो कविताएँ

कामनाएँ

ओ हेम-आकाश के सुन्दर पक्षियो।
तुम कभी नहीं उतरोगे धरती पर।
यह धरती तुम्हें पसन्द नहीं।
बादलों के घोंसलों में
जन्म लेते हैं तुम्हारे बच्चे।
सान्निध्य सूर्य का प्राप्त है तुम्हें।
आओ मिलकर विचार करें
उस आलोक-पुंज के विषय में।

चमत्कार युक्त हैं धरती के देवता।
ध्यान से ढूंढ़ो उन्हें
पर्वत-शिखरों और समुद्र की गहराइयों में।
प्रेम का वह अमूल्य रत्न
अवश्य प्राप्त होगा तुम्हें।
अपने हृदय में ढूंढो
वह प्रेम-निवासवृन्दावन।

विवेक की किरणे
प्रवेश करेंगी हमारे भीतर भी।
स्थिरता प्राप्त होगी अस्थिर को।
छाया को शरीर प्राप्त होगा
और मूर्त रूप हवा की आत्मा को।
स्वप्न बदल जायेंगे विचारों में।
तूफानों के लिए भारी पड़ जायेंगे हम।
उठा नहीं पायेंगे वे हमें।
सुबह के पंखधारी घोड़ों को
हम रोक डालेंगे।

दिशा देंगे
सांझ की आंधियों के वेग को।
तुम्हारा हर शब्द।
महासागर होता है सच्चाई का।
हमारे जलयान को
कौन मोड़ रहा है तट की तरफ ?
माया से डरो नहीं।
हम तोड़ डालेंगे
उसकी शक्ति और सत्ता के सब बंधन।
सुनो !
सुनो !
तुम्हारी बहस और झगड़े खत्म हुए या नहीं ?

अलविदा, ओ अरण्यानी
अलविदा, ओ आकाश के स्वर्ण और रजत !
अलविदा, ओ शांततम उपवन !
कहां, किस तरह के मैं रचूं तुम्हारे लिए गीत ?
और किस तरह की मैं करूं कामनाएं ?

भिखारी

आधी रात आगमन हुआ हमारे सम्राट का।
वह चल दिया खामोशी के भीतर। कुछ कहा उसने।
सुबह भीड़ के बीच चला आया सम्राट।
और हमें मालूम भी नहीं हुआ।···
हम उससे मिल भी नहीं सके।
हमें ज्ञात कर लेने चाहिए थे उसके आदेश।
कोई बात नहीं,
भीड़ के बीच हम रास्ता बना लेंगे
उस तक पहुंच जायेंगे और पूछेंगे।

कितनी बड़ी है भीड़। कितनी सड़कें !
कितनी राहें और कितनी पगडंडियां !
वह बहुत दूर भी तो जा सकता था।
पता नहीं वह खामोशी में लौट आएगा या नहीं।
रेत पर सब जगह निशान हैं पांवों के।

हम पहचान लेंगे—किसके पांवों के निशान हैं ये।
एक बच्चा जा रहा था इधर से।
यह देखो—बोझ उठाए एक औरत।
और इधर—बार-बार गिरता हुआ एक अपंग।
सचमुच, तथा हम सफल नहीं होंगे पहचानने में?

आखिर, सम्राट के पास तो हमेशा लाठी रहती है।
आओ पहचान लें उसका सहारा लिए लोगों के निशान।
यह रहा उसका जुझारू अंत।
सम्राट की लाठी कुछ अधिक मोटी है?
और चाल कुछ अधिक धीमी।
ठीक निशाने पर पड़ेगी लाठी की मार।
कहां से टपक पड़े हैं इतने सारे लोग?
जैसे कि सब ने तय किया हो
पार करना हमारा रास्ता।
यह लो—हमने तेज़ कर दिए हैं अपने कदम।
मुझे दिखाई दे रहे हैं वे भव्य पद् चिह्न
और साथ में वह शांतिप्रिय लाठी।
शायद, यह हमारा सम्राट है।
हम उसके पास जायेंगे, पूछेंगे।
धकियाते हुए हम पीछे छोड़ आए हैं लोगों को।
हम जल्दी में हैं।
पर लाठी लिए चलता हुआ
यह सम्राट नहीं बल्कि भिखारी है।

1916

अनुवाद: वरयाम सिंह

मृत्यु-सा बलवान होता है प्रेम

□ इसाक बाशेविस सिंगर
अनुवाद : इन्दुप्रकाश कानूनगो

योंतिल बूआ सखियों के संग प्रेम के विषय में बातें कर रही थीं, "प्रेम जैसी कोई चीज है। जरूर है। पुराने समय में भी थी। लोग सोचते हैं नयी चीज है। लेकिन ऐसा नहीं। बाइबल में प्रेम का जिक्र है। लेबान ने अपनी लड़की लीह का विवाह जेकब से किया जबकि जेकब रेशेल को चाहते। सोचो भला, वे संत थे ! उससे क्या ?—हाड़ मांस के ही थे ना ! नजर जो किसी से भिड़ी कि भिड़ गयी ! फ़र्क सिर्फ इतना ही पुराने समय में जिससे प्रेम हुआ उससे फट शादी हो गयी। आजकल लड़के लड़कियों की सगाई हो जाये फिर भी यहां वहां ताकते रहते हैं।

"तुरबिन के पास किसी गांव में एक सामन्त रहता था, उसे लोग सनकी कहते। यूं देखा जाये सारे जमींदार थोड़े बहुत घनचक्कर थे। भोग-विलास में डूबे जानते नहीं आदमी हैं या पैंजामा। लेकिन यह सामन्त, जान श्वाल्स्की, पूरा खब्ती था। बोलता क्या, चीखता ! गुलामों को खबरदार रखता गड़बड़ की खाल खींच लेगा मगर किसी को उंगली नहीं गड़ायी। जब कभी कोई किसान बीमार पड़ता उसी घड़ी इलाज के लिए डाक्टर नहीं तो कम्पाउण्डर बुला भेजता। एक यहूदी, बेत्ज़ालेल, उसका मुंशी था जिसे अक्सर धमकाता लटका कर उड़ा देगा जबकि प्यूरिम के दिन प्यूरिम-का-इनाम देता। जब बेत्ज़ालेल ने कन्या का ब्याह किया सामन्त ने दायजा दिया। शादी में आया, यहूदियों के साथ कोज़ेकी नाच नाचा और इतना भोंडा प्रदर्शन किया लोगों की हंसी रोके न रुके। श्वाल्स्की ने शादी नहीं की क्योंकि वह एक जमींदारिन से प्रेम करता था जो विवाहित थी। उसका नाम था एलिजा। ऐसी कोई सुन्दरी नहीं जो उस पर लट्टू हो गया। गोया बुरी नहीं, भद्र और छरहरी। गैर-यहूदी अमूमन गोरे होते हैं वह सांवली थी, आंखें काली जिनमें मोहिनी मुस्कान भरी होती। उसका पति काउंट लिप्स्की, पोलेंड का सबसे बड़ा पियक्कड़ था। वह कभी भी ढंग से बैठा नहीं दिखा। अपनी सारी दौलत पी गया। उसे खबर थी श्वाल्स्की उसकी पत्नी से प्रेम करता है, मगर ऐसी बातों से उसे कोई उलझन नहीं हुई। कहते हैं आधी रात नींद खुलती वह कलश में भरी वोद्का नली से पी जाता। यदि एलिजा दुश्चरित्र स्त्री होती वह निकृष्टतम पाप कर सकती थी। मगर वह शीलवान थी। श्वाल्स्की को समझाती उसका पीछा छोड़ दे वह शादीशुदा है, मगर श्वाल्स्की प्रेम में दीवाना उसकी एक न सुनता। रोज प्रेम पत्र लिख हरकारे के हाथ पहुंचाता। शायद साल में एक आध का जवाब आता। उसमें वही लिखा होता, 'मैं विवाहित हूं।' हर रविवार श्वाल्स्की गिरजे जाता उससे नज़र मिलाने का अवसर लेने। उन उत्सवों में जहां दोनों शामिल हुए एलिज़ा ने सिर्फ एक बार उसके संग नाचना स्वीकार किया। कदाचित् वह भी उसे चाहती

मगर पति को धोखा देना नहीं चाहती थी। पादरी श्वाल्स्की को अक्सर समझाता एलिज़ा को चैन से जीने दो। लेकिन वह कहता, 'सारी दुनिया में सिर्फ एक ही स्त्री है, एलिज़ा। पूरे हफ्ते इसी उम्मीद में जीता हूं इतवार उसका मुख देखूं।'

"उसका पति, काउंट लिप्स्की, लम्बा थुलथुल आदमी था, चेहरा हमेशा लाल नसें फूली-फूली नाक तक उभरी। पी पी कर फेफेड़े खोखले। डाक्टरों ने छूने से मना किया मगर मरते-मरते पीता रहा। नगर के किसी डाक्टर ने बोला, 'काउंट लिप्स्की जितनी शराब पीता है उतना पानी ही कोई पी ले उसका दम घुट जायेगा।' और उधर श्वाल्स्की था जो नशे में कभी न डूबा। वह तो एलिजा में ही जा डूबा था।

"काउंट लिप्स्की बिलकुल पागल था। उसे अपनी जागीर का कुछ होश नहीं था। सारा कारोबार मुंशी के हाथ था जो जितना मन करता चुरा लेता बाकी खराब इन्तजाम में तबाह होता जाता। एलिजा बिचारी अपने तईं सीमित थी भला कारोबार में क्या दखल देती। पुस्तकें पढ़ती और बगीचों में चहलकदमी करती। बच्चे हुए ही नहीं। क्या पता?—काउंटर लिप्स्की ही पी पी कर नाकाबिल हो चुका हो! जीवन के आखिरी महीने वह बिस्तर से उठ नहीं पाया। शराब उसके पैरों को जकड़ गयी। उसे मधुमेह हो गया क्योंकि वोदका में खूब शक्कर जो होती है। अब क्या कहें, वह अन्तिम संस्कार पूरा किये बगैर चल बसा; कोई कन्फेशन नहीं, किसी वसीयतनामे को लिखे बिना ही। किसी ने बताया मरने के बाद उसका बदन फूलकर कुप्पा हो गया। अन्त्येष्टि में भले घरों से कोई शामिल नहीं हुआ क्योंकि उसने सारे पड़ोसियों का तिरस्कार किया, ईश्वर की ईसाई सन्तों की बुराई की। अर्थी हमारे घर के सामने से गुजरी। बहुत छोटी थी मैं, मैंने शवयात्रा देखी। गैर-यहूदियों में रिवाज है विधवा के आगे दो आदमी चलते हैं। एलिजा का कहीं कोई भाई था जिसे मैंने पहली बार देखा, दूसरा आदमी था जेन श्वाल्स्की। लम्बे और मोटे काउंट लिप्स्की की तुलना में जेना श्वाल्स्की ठिंगना और दुबला-पतला था, मूंछें लम्बी पीली-सी चिबुक तक फैली। एलिजा काली पोशाक पहने थी। श्वाल्स्की उसका हाथ कुछ इस तरह थामे हुआ था कहीं वह भाग न जाये। प्रेम एक तरह का पागलपन ही तो है।

"लिप्स्की मर गया, दफना दिया गया। सबने सोचा एलिजा तत्काल श्वाल्स्की से ब्याह कर लेगी, लेकिन विधवा अड़ी रही वह एक वर्ष शोक करेगी। श्वाल्स्की को पता चला प्रतीक्षा करनी पड़ेगी उसने आकाश पाताल एक कर दिया। अभी तक क्या कम इन्तजार किया? लेकिन एलिजा दृढ़ थी वह एक वर्ष बीतने के पूर्व ब्याह नहीं करेगी। लिप्स्की कोई वसीयत नहीं लिख गया सो बीसीयों वारिस खड़े हो गये। वे आये, भगवान जाने कहां से, और एलिजा से सब कुछ खींच ले गये। वैसे भी बचा ही क्या था? जिसका मन चला टुकड़ा-टुकड़ा उठा लिया। लोग ऐसे होते हैं। सोचते हैं जैसे बस वे ही हमेशा जीवित रहेंगे। श्वाल्स्की को जब पता चला बंदूक लिये दौड़ा आया। लेकिन एलिजा बोली 'बीच में न पड़ो।' उसका बोल तो जैसे देववाणी होता। ऐसे लोग भी होते हैं चुपचाप स्वयं को लुटने देते हैं। इसे क्या कहें भद्रता या मूर्खता? कहते हैं वह किसी ऐसे ऊंचे खानदान से थी जिसमें धन का महत्त्व नहीं होता सन्मान का आवेग प्रमुख होता है। चाहे जो हो उसके पास लेकिन कुछ नहीं बचा सिवा खाली मकान के। लिप्स्की का यहूदी-मुंशी येंकील गैर-यहूदियों का क्या बिगाड़ पाता? यहूदी गैर-यहूदी से कैसे लड़ता? बोला, 'मालकिन, वे आपका सब ले गये।' लेकिन वह बोली, 'जो मेरे पास था उससे ज्यादा तो नहीं ले गये ना?' काउंट लिप्स्की के साथ रहते उसने कई वर्षों दुख झेला मगर किसी ने उसे

शिकायत करते न सुना। कुछ लोग भेड़िये होते हैं कुछ बकरी। पर अन्ततः कोई अपने संग कुछ नहीं ले जाता। उन्होंने उसके आगे कोई दस्तावेज रखा और उसने उस पर आंख मीचे दस्तखत कर दिये।

"एक महीना बीते न बीते कचहरी का संतरी कुछ कारिंदों के साथ आया बोला कहीं और चली जाओ। मकान और फर्नीचर अब उसका न रहा। दोबारा श्वाल्स्की उसके बचाव में दौड़ा आया : छोटा आदमी फिर भी आग-बबूला। एलिजा कह भर देती आग में कूद पड़ो वह एक पल न झिझकता : मगर बोली वही अकेली निपटेगी। अपनी रियासत में आने का निमंत्रण दिया मगर उसने बिन ब्याहे उसके घर में रहने से मना कर दिया। बात ज्यादा क्या बढ़ाऊं, उसे एक धनी किसान मिल गया—गांव का बुर्जुग। मकान के पिछवाड़े झोंपड़ी में पटसन और दीगर चीजें रखता था जिन्हें हटा कर उसके लिए उसने जगह बना दी। पति के रिश्तेदारों ने केवल एक पलंग और उसकी किताबें ले जाने दी। उसे बस उतना ही चाहिये था। अपने कुछ निजी आभूषण वह छिपा लायी थी जिन्हें येंकील के जरिये बिकवा कर एक वर्ष गुजारा चला लिया। रविवार की दोपहर दर्जियों और मोचियों के शार्गिद और दरजिनें गांव दौड़ी आतीं विधवा की झोंपड़ी में झांकने ताकने कि अहंकारी काउंटेस कैसे क्या करती है। उसके पास एक नौकरानी नहीं थी। गांव के मुखिया रविवार को उसे ब्रिज्का में बिठा गिरजे ले जाते। श्वाल्स्की उसे अपनी रियासत में लाने के लिए लगातार पीछे पड़ा रहा लेकिन वह जरा विचलित नहीं हुई। बिलकुल पवित्र आत्मा, इतनी बड़ी तुलना के लिए क्षमा करना, एकदम रेब्बित्जिन।

"साल बीता और वह दोबारा जागीरदारिन बनी। पड़ोस के सारे कुलीन शादी में आए। रिवाज नहीं है कोई दुल्हन, चाहे पुर्नविवाह करती विधवा हो, मातमी लिबास पहने। लेकिन एलिजा अड़ी रही विवाह में काली पोशाक पहनेगी। सबने गुलदस्ते और उपहार दिए। पादरी ने प्रवचन दिया। कुलीन घरों की शादियों में किसान अपने मन से शामिल हों ऐसा कभी नहीं सुना था। लेकिन वे अनेक गांवों से आए। चूंकि वह किसान की झोंपड़ी में रही उन्होंने उसे अपना समझा। ब्याह करने वह गांव के मुखिया की ब्रिज्फा में आई। लेकिन गिरजे से श्वाल्स्की की रियासत में आठ घोडों की बग्घी में चढ़ी। किसान घुड़सवार सैनिक से बन आगे-आगे चले। श्वाल्स्की की रियासत का दरवाजा पत्तियों और फूलों से सजा था। यहूदी और गैर-यहूदी बैंड युगल के सम्मान में 'गुड नाइट' धुन बजा रहा था। श्वाल्स्की खूब धनी नहीं था लेकिन जायदाद ढंग से संभाले था और कोई उसे धोखा नहीं दे सकता था। लगा जैसे एलिजा की फूटी किस्मत खुल गई। रुको, जरा थोड़ा पानी पी लूं :"

मैंने येंतिल बुआ को एक लोटा पानी दिया, बदले में उसने आशीर्वाद दिया। 'हंसो मत', उन्होंने कहा, "मुझे रोना आ रहा है।" उन्होंने मलमल के रूमाल पर नाक छिनकी। फिर उन्होंने बोलना आरम्भ किया।

"शादी के एकदम बाद जेन श्वाल्स्की ने इस तरह की बाल नृत्य पार्टी दी जैसी कोई राजा भी क्या देता। यह यहूदी पर्व पासओवर के कुछ हफ्ते बाद की बात है जब मौसम बड़ा सुहावना था। एलिजा उसके खिलाफ थी। वह शान्त मिजाज और प्रौढ़ हो गई थी, किशोरी कत्तई नहीं। लेकिन श्वाल्स्की अपनी खुशी जग जाहिर करना चाहता था। उसने सैकड़ों जागीरदारों को बुलाया जो दूर नगरों से आए। सुबह से जो बग्घियां दौड़तीं तो शाम हो जाती। तुरबिन की दुकानों में खूब बिक्री हुई। एक बैन्ड ज़ामोस्क से आया दूसरा ल्युबलिन से। कई साल

तक लोग उस पार्टी की बात करते रहे : क्या खाना, क्या मदिरा, क्या नाच, क्या गान, वाह ! रेब बेत्ज़ालेल ने बतलाया श्वाल्स्की को उसके लिए अपनी वन-भूमि का एक हिस्सा कम कीमत पर बेचना पड़ा । हालांकि यहूदी और किसान उसमें निमन्त्रित नहीं थे । लेकिन अनेक किशोरों ने बाहर खड़े-खड़े ही नाच और गान का मजा लिया । नौकरों ने उन्हें शराब पिलाई और खाना दिया । दूसरे दिन जमींदार शिकार खेलने गए और न मालूम कितने जानवर मार लाए । जब वे लौटे, पूरी रियासत तहस-नहस हो गई । एलिजा ने हाथ जोड़ विनती की अपनी दौलत उड़ाए नहीं । लेकिन वह खुशी से पगला गया था ।

"मित्रों, उसकी सारी दौलत एक साल भी चल न पाई । फिर एकाएक पता चला एलिजा बीमार पड़ गई । क्या रोग हुआ था आज तक नहीं मालूम । एलिजा शनैः-शनैः घुलने लगी । श्वाल्स्की ने जायदाद का एक हिस्सा फिर बेचा और सबसे बड़ा डाक्टर बुलवाया, लेकिन कोई नतीजा नहीं निकला । हमारे घरेलू चिकित्सक, लिप्पे, को भी बुलवा या गया; उसने सुना किसी डाक्टर ने कहा उसका रक्त पानी हो जाता है । भगवान दया करे, जब दिन आता है, यम के दूत रास्ता ढूंढ़ लेते हैं । बीमारी महीनों खिंचती गई, सबने उम्मीद छोड़ दी, मगर श्वाल्स्की नये-नये डाक्टरों, प्रोफेसरों और नीम-हकीमों को बुलवाता गया । वह रब्बी के पास भी गया और उसने यहूदी प्रार्थना-गृह सिनेगाग में एलिजा की दुआ के लिए दिए जलाने वास्ते धन-दान दिया । कुछ फर्क नहीं पड़ा । एलिजा मरने लगी । पादरी आया और उसने कन्फेशन लिया । उस पर पवित्र जल छिड़का । एलिजा चल बसी । रेब बेत्ज़ालेल ने बताया वह सन्त की तरह शांत हुई । कौन जाने ? उनमें भी भली आत्माएं होती होंगी । किसी धर्मग्रंथ में लिखा है भले गैर-यहूदी स्वर्ग जाते हैं ।

"श्वाल्स्की इतना रोया, कराहा, छाती पीटी कह नहीं सकती । लेकिन वो तो गई । उसे गिरजे ले जाया गया जहां शवयात्रा शक्त होने तक शव रखा गया । श्वाल्स्की ने उसकी और अपनी समाधि के लिए भूखंड खरीद रखे थे । वह पीला और कृशकाय हो गया था जैसे तपेदिक हो गई हो । कपड़े जैसे खूंटी टंगे हों । मूंछें सफेद । चलते-चलते खुद से बोलता पागलों सा ।

"मगर जिसके दिन लदे न हों वह जीता है । उसने जहर खाया पर किसी ने मुंह में दो उंगलियां फंसाकर सब उगलवा दिया । उसकी शेष सारी सम्पत्ति खत्म हो गई, हालांकि रेब बेत्ज़ालेल ने जितना संभव हो सका बचा दिया । दो-एक साल बीते, श्वाल्स्की हालांकि अभी मरा नहीं उसके पास एलिजा का एक चित्र था जिसे रात-दिन देखता रहता । घर की बनिस्बत ज्यादा वक्त समाधि पर बिताता । हर दिन कब्र पर फूल चढ़ाता । उसके लिए उसने एक शिला बनवाई जिस पर किसी ऐसे फरिश्ते की सूरत तराशी जो एलिजा की शक्ल से मिलती थी । वह शिला को चूमता और उससे बातें करता । कारोबार से बिल्कुल बेखबर हो गया । सारा काम काज बेत्जालेल देखने लगा । कुछ वर्ष बीते । कहते हैं धरती में जो समा गया उसे भूल जाओ । लेकिन श्वाल्स्की भूल नहीं पाया । पादरी ने भर्त्सना की और कहा लम्बे समय तक शोक करने की पाबन्दी है । कई जमींदार और रिश्तेदार सांत्वना देने आए लेकिन उसे हंसी न फूटी । ऊपर से वह शराब पीने लगा । आस पास सुन्दर स्त्रियों की कमी न थी मगर उसने किसी दूसरी स्त्री पर आंख न उठाई ।

"मित्रो अब जरा ध्यान से सुनो । एलिजा को दफनाने के बाद श्वाल्स्की ने अपने बेडरूम पर ताला लगा दिया, और उसमें किसी को भी जाने पर पाबन्दी लगा दी । घर की नौकरानी

भी उसमें नहीं घुस सकती थी उसने उसके श्रृंगारकक्ष पर भी ताला जड़ दिया। कपड़े का हर टुकड़ा—यहां तक कि हर चीज जिसको उसने छुआ भर था—उसके लिए पवित्र हो गई। वह पहले से ज्यादा ही दुबला हो गया और उसकी मूंछे बड़ी लगने लगी। समय बीतते वह नौकरों की छुट्टी करता गया। आखिर में सिर्फ आया बची, एक बूढ़ी स्त्री गूंगी और बहरी।

"शरद का वह मौसम सबसे ज्यादा ठंडा था। खेतों में बीज जम गए थे। इतनी बर्फ गिरी कई मकान दब गए और लोगों को घर खोद बाहर आना पड़ा। सर्दी की इतनी तेज लहर के बीच भी श्वाल्स्की समाधि पर जाने में एक दिन नहीं चूका। एक दिन वह वहां फावड़ा ले गया, कदाचित कब्र से और शिला से बर्फ हटाने के लिए। कंधे पर फावड़ा रख जमींदार का बाहर आना विचित्र बात थी मगर लोग उसके झक्कीपन के आदी हो गए थे। वह सारा दिन समाधि पर बिताता, कभी देर रात भी। शनैः-शनै गरमी आती गई और बर्फ पिघली। गांव में से नदी-सा पानी बहा।

"यहूदी-पर्व पासओवर के कुछ दिन बाद समाधि के चौकीदार ने पुलिस को रिपोर्ट लिखायी एलिजा की कब्र उखड़ी-उखड़ी है। उन दिनों चोर कब्रों से शव चुरा डाक्टरों को बेचते जिन पर वे परीक्षण करते। लेकिन वे बर्बर तो ताजे शव चुराते थे! सड़े गले शव पर कौन परीक्षण करता भला? तुरबिन में लोग कहने लगे एलिजा कब्र से निकल रात में घूमती है। अफवाह उड़ती है गवाह एकदम तैयार: इसने अपनी आंखों देखा उसने कानों सुना। वह वहां पुल पर खड़ी थी, नदी किनारे वस्त्र धो रही थी, किसी की खिड़की खटखटा रही थी। अफवाहें श्वाल्स्की तक पहुंची वह चिल्लाया: 'मूर्खों, मुझे तुम्हारे जादू टोने झाड़ फूंक नहीं सुनना।'

"लेकिन जब सारा नगर बात करने लगे वह बकवास नहीं हो सकती। रूसी अधिकारियों ने शिला के नीचे खोद ताबूत खोलने का आदेश दिया।

"श्वाल्स्की ने सुना तो गुस्से से लाल हो गया, भूल गया पोलैंड आजाद नहीं है। रूसी सैनिकों ने उसे बाहर धकेल दिया, ताबूत निकाला, ढक्कन खोला, पेटी खाली थी। आधा नगर काला अचरज देखने दौड़ा आया। कब्र में से एलिजा को कोई चुरा ले गया। फिर तुरबिन में हर दिन जो हुआ वह कल्पनातीत है। लोगों ने दौड़कर श्वाल्स्की को खबर सुनाई पर वह पागलों की तरह चीखा। रेब बेत्ज़ालेल तब जिंदा था, लेकिन अब वह मुंशी नहीं था। कुछ दिन तक सारा नगर केतली की तरह उफनता रहा। यहूदी डरे उनके खिलाफ झूठे आरोप गढ़े जायेंगे। कुछ ने बाल की खाल निकाली कि यहूदियों ने ही यहूदी-उत्सव पास ओवर पर बनने वाली ब्रेड के मैदे में उसका खून डाल दिया।

"इस सब के बीच नगर में एक नया बखेड़ा उठ खड़ा। हुआ यूं। सामन्त की बूढ़ी नौकरानी ने-पकौड़े तलने के लिए चूल्हा जलाया। उसके हाथ कांपे और जलता अंगारा दूर जा छिटका। एकाएक आग भड़क गयी। बुढ़िया चीखी और किसान देखने दौड़े क्या हुआ। फायरमेन आधे-अधूरे पानी भरे पीपे लेकर दौड़े। किसी ने एलिजा के बेडरूम का ताला तोड़ डाला। बस उसी में सारा राज था। सामन्त खर्राटे भरता सो रहा था—शायद नशे में भरपूर—और उसकी बगल में एक अस्थिपिंजर लेटा था। हां, श्वाल्स्की ने खुद ही कब्र से एलिजा को चुरा लिया था। उसके लिए इतना तरस रहा था कि शरद की एक रात कब्र खोद पेटी का ढक्कन उचकाया और शव के अवशेष घर ले गया। रात स्याह थी किसी ने नहीं देखा। पुलिस ने बयान लिया तो उसने सब कुछ सच-सच बता दिया। शव लगभग पूरा गल गया था, यहां वहां

चिपका मांस उसने छील दिया, सिर्फ अस्थियां बचीं। रूसियों को अपने कान विश्वास नहीं हुआ। 'इतना वहशी काम कहीं कोई कर सकता है ?'—उन्होंने पूछा। उसने तत्काल जवाब दिया, 'मैं लालसा थामे नहीं रख पाया। कुछ नहीं तो अस्थियां ही सही। फांसी चढ़ाना चाहो चढ़ा दो पर दफनाना उसी के पास।''

''रूसियों को जरा पता नहीं था ऐसे जुर्म की क्या सजा दी जाये। उन्होंने गवर्नर को ल्यूबिन रिपोर्ट लिख भेजी। उन्हें भी कुछ पता नहीं था सो उसे वारसा अग्रेषित कर दी जहां से पीट्सबर्ग भेज दी गयी। इस बीच उन्होंने श्वाल्स्की को आजाद कर दिया। अस्थिपंजर दोबारा दफना दिया गया। श्वाल्स्की सिर्फ एक साल और जिया। वह खुद ही सूखा खंक हो गया। उसे पूरे सम्मान के साथ एलिजा के पास दफनाया गया।

''कहने का मतलब यह कि : किसी के दिमाग में कोई फ़ितूर सूझता है और वह फैलकर माथा जकड़ लेता है। फिर धुन चढ़ती है। बिलकुल भूतनी की तरह, क्या कहते हैं यहूदी लोक-कथाओं में उसे, हां, डायब्बक, द्वेशी दुरात्मा। वे दोनों ही बहुत भले मानुष थे। गैर-यहूदियों की कहीं कोई जन्नत हो वे वहां हमेशा-हमेशा साथ रहेंगे। पवित्र ग्रन्थ में सच लिखा है : 'मृत्यु-सा बलवान होता है प्रेम, कब्र-सी क्रूर होती है ईर्षा।' सो, छुट्टी का दिन सेब्बाथ बीत गया है। आकाश में तीन तारे उग आये हैं। सभी को अगले हफ्ते की शुभकामनाएं।''
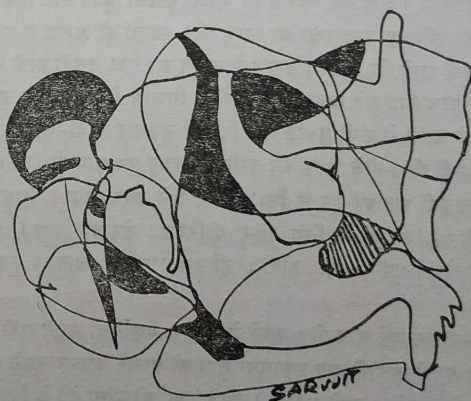
कहानी

बीमार मछलियां

□ श्रीवत्स

जल्दी से उसने बिस्तर छोड़ा और बाथरूम में घुस गया। आंख खुलने से लेकर बाथरूम में बैठने तक के समय में ही उसके दिमाग में एकत्र विचारों के लावे में गर्मी आनी शुरू हो गई। छोटी-छोटी मछलियों की तरह सैंकड़ों विचार, जिन्हें वह विचार से बेहतर छोटी-छोटी वर्ण-संकर मछलियां कहना अधिक पसंद करता था, कुलबुलाने लगीं। ऐसा क्यों होता है—ऐसा क्यों नहीं होता। 'साली-बकवास' दो-तीन और भद्दी-सी गालियां देकर उसने अपने बाल नोचे, थूका और अपनी नपुंसकता पर खीज उठा। थूक बहकर फैल गया। उसे अपने मुंह के थूक और बाहर पड़े हुए थूक में एक ऐसी समानता दिखलाई दी, जिससे अपने आप से घिन होनी स्वाभाविक थी। उसे मालूम था—उसे अब क्या करना है। बाथरूम से उठकर वह कमरे में जाएगा—वह गया भी। अलमारी खोलेगा···ब्रश, साबुन, पेस्ट निकाल कर टेबल पर रखी एक और बीड़ी निकाल कर सुलगाई। एक कश खींचते ही कड़वा कसैला धुंआ सीधे गले से जा टकराया, जहां छालों ने अपना अस्तित्व जमा रखा था। धुंए और छालों की आपस में नहीं बनी, फिर जोर क खांसी। आंखों में पानी तैर आया। दराज में टटोल कर एक दूसरी हल्के मार्के की बीड़ी निकाल कर सुलगाई। पांच-सात लंबे कश खींचकर बीड़ी गिलास में डाल दी। ब्रश किया, मुंह धोया, कपड़े पहने, लंबे बालों में कंघी घुमाई और किताबें उठाकर जल्दी-जल्दी सीढ़ियां उतरने लगा। मछलियां रेंग रही थीं। नीचे उतर कर गली के नुक्कड़ पर चाय पी। फिर चल पड़ा। पीरियड लगाए···रिसेस हुई, छत पर धूप में बैठा···फिर नीचे उतर आया। 'उस' के साथ चाय पी। रिसेस खत्म हो गई। दो घंटे के लिए फिर पीरियड। डेढ़ बज गया। पहले पोस्ट-ऑफिस। मालूम था···कोई चिट्ठी नहीं होगी। हॉस्टल···खाना खाया। मछलियां अभी भी नहीं थमी।

एक कप खूब गर्म चाय पी। कमरे में लेटा। मछलियां लड़ने लगीं। उठकर फिर बाहर निकल आया। अब? अब की इस प्रश्ननुमा मुद्रा को सामने देखकर उसने पीठ फेर ली। परन्तु 'अब' फिर उसके सामने···उसी मुद्रा में। उसने 'अब' को झांसा देने के विचार से एक मुस्कुराहट फेंकी। मुस्कराहट के कारण पैदा हुए फैलाव में होंठ एक विचित्र-सी दशा में मुड़ गये। दांत झांकने लगे। उसने दोनों हाथों से होठों को पकड़कर सामान्य हालत में लाकर टिका दिया।

—हां···हम लाइब्रेरी चल रहे हैं। वह बुदबुदाया।

—हम स्कॉलर बनेंगे। हम साहित्यिक आदमी हैं—साहित्य का अध्ययन करेंगे···हम लाइब्रेरी में छांट-छांटकर किताबें पढ़ेंगे।—'अब' आशंका के साथ आगे-पीछे चलता रहा।

किताबों की अलमारी के पास पहुंच कर उसने 'अब' को किताबों की तरफ इशारा करके अंगूठा दिखाया। और सचमुच उसके हाथ अलमारी में सजी किताबों पर रेंगने लगे। मार्क्स, एंगिल्स, गोर्की, दोस्तोएव्स्की, शोलोखोर, टैगोर, इन्दिरा की ट्रैजिडी, जे० पी० की जीवनी, चंद्रा की जेल डायरी···कितने सारे नाम···सब बड़े-बड़े। मार्क्स को पढ़ा जाए या टैगोर को। शोलोखोर के कज्जाकों की तरफदारी की जाए या···? 'अब' ने पीछे से पीठ ठोंकी। उसने जल्दी से एक किताब खींची और काउंटर से होता हुआ रीडिंग हाल में कोने की एक मेज पर बैठ गया। चार पृष्ठ पढ़ने के बाद उसने पाया कि वह पढ़ नहीं रहा है। किताब बंद कर धीरे से मेज़ पर रखी और चोरों की तरह लाइब्रेरी से बाहर आ गया। "हद होती है ईमानदारी की" शब्द निकले नहीं, होठों में ही गुम हो गए। 'अब'···

और 'अब' का खयाल करते ही उसके पांवों में गति आ गई। कैंटीन के पास से गुजरते हुए उसने भूख महसूस की। चाय पीते हुए उसने कई जोड़ों को घुल-मिलकर बातें करते हुए पाया। हंसते हुए समोसों की प्लेट में चम्मच चलाते हुए देखा। लड़कियों की आंखों में घुली हुई मर्दानगी देखी। उभारों पर नज़रें टिकाने की कोशिश की किंतु उसे कोई उत्तेजना महसूस नहीं हुई। रिसेस में उसके साथ चाय पीते हुए, महज बोलते रहने के लिए, जब उसने ज्योतिष में अपनी रुचि जाहिर की थी तो उसने झट अपना हाथ आगे कर दिया था। वह थोड़ी देर तक उसके हाथ की रेखाओं को पढ़ता रहा था···मन में सोच रहा था कि इसके हाथ को छूने पर यदि थोड़ी-सी भी झनझनाहट महसूस हुई तो ठीक है, अन्यथा···

—अरे देखो भी—उसने अपना हाथ और आगे कर दिया था।

—नहीं यहां नहीं···ऊपर छत पर चलो—वह बिना झिझके उसके साथ छत पर आ गई थी। और अब चारों ओर से वीरानगी का दिलासा पाकर उसने जितनी फुर्ती से उसका हाथ अपने हाथ में ले लिया था, उतनी ही फुर्ती से झटक भी दिया। बर्फ़ जैसा ठण्डा हाथ। उसने पीछे से पहले अपना नाम, फिर दो-तीन गालियां सुनी थीं, जो यकीनन उसी को दी गई थीं। कैंटीन में भीड़ बढ़ती देख वह बाहर निकल आया। इससे पहले कि अब एक बार फिर उसके सामने आता, उसने सख्ती से अपनी मुठ्ठियां भींच लीं और सीधा चलने लगा। जहां रास्ता मुड़ा···पांव भी मुड़ते गये। रास्ता कभी लंबा, कभी छोटा, कभी बाज़ार से, कभी गली से··· उसके पांव निर्बाध गति से बढ़ते रहे।

सूरज थककर डूबने लगा। यही वह समय था जब उसकी पुतलियां चमकने लगीं। 'अब' ने उसे गन्तव्य तक पहुंचा दिया था। उसने दरवाजा खटखटाने के लिए हाथ उठाया किंतु कॉलबेल का ध्यान आते ही अंगूठा चिपका दिया। टर्र···न···टर्र···र्र···न! कदमों की आहट। दरवाज़ा खुला। दरवाज़ा खोलने वाली छरहरे बदन की बड़ी-बड़ी आंखों वाली सोलह-सत्रह वर्ष की एक खूबसूरत लड़की थी। 'हैलो'···मुंह में मिठास घोलते हुए उसने बड़े ही कोमल स्वर में हैलो का जवाब दिया किंतु गले से घरघराती आवाज़ ही निकल पाई। 'आइए' के साथ ही वह ड्राइंगरूम तक खिंचा चला गया। 'बैठिये' के साथ ही वह कुर्सी में धंस गया और बेबकूफों की तरह उसके मुंह की ओर देखने लगा।

—आप बैठिए, मैं अभी अनु को भेजती हूं।

—अनु को भेजने की क्या जरूरत है···आप ही बैठिए ना···!—वह कहने को हुआ किंतु तभी उसे झटका लगा। शब्द पिघल कर मस्तिष्क में ही छन गये। वह क्या कहने जा

रहा था ? वह यहां पढ़ाने आया है···वह अब अध्यापक है। यह ध्यान आते ही उसने पिछली जेब से पैन निकाल कर हाथ में ले लिया और पूरी तरह से अध्यापकीय मुद्रा बनाकर बैठ गया।

—लीजिए···आ गई आपकी अनु। उसने अनु के बैठते ही उसे काम दिखाने को कहा।

काम तो आपने दिया ही नहीं था।

"क्या मेरे देने से ही काम होता है ?" उसने डांट कर पूछा। अनु बेचारी घबराकर चुप बैठी रही।

"काम क्यों नहीं किया है" उसने एक डांट और लगाई और फिर स्वयं ही खिसिया कर उसे पुचकारने लगा।

"सर, आज हमने खूब मजे किए···हम पिकनिक पर गये थे। वहां हमने झील पर बहुत बड़े-बड़े कछुए देखे···इत्ते बड़े-बड़े"। दोनों हाथ फैलाकर उसने आकार बताया। अनु गीदड़ भभकी से मुक्त हो कर शुरू हो गई।

'सच' ! बालसुलभ आश्चर्य प्रकट करते हुए उसने भी पूछा।

"अच्छा···सर आप रात क्यूं भाग गए थे···बगैर खाना खाए ? मम्मी ने आपके लिए भी खाना तैयार किया था।"

इस प्रश्न से वह बौखला गया। अनु लगातार बोले जा रही थी और वह याद करने की कोशिश कर रहा था कि पिछली रात खाना खाने के लिए उससे किसने कहा था। दिमाग पर बहुत ज़ोर डालने पर भी वह कुछ याद न कर सका। उसे अपने आप पर शक़ होने लगा। वह इतना भुलक्कड़ भी नहीं था कि·· वह झट से बतला सकता है कि किस वर्ष, कौन से महीने में, कितनी तारीख को, कौन दिन, कितने बज कर कितने मिनट पर वह पैदा हुआ था। फिर यह पिछली रात की घटना ही उसे क्यों याद नहीं आ रही। उसके दांत आपस में टकटकाने लगे। तभी चाय के लिए अनु की मम्मी आ गई। चाय के साथ ढेर सारे खाद्य पदार्थ। चाय रख कर वे अंदर चली गयीं। थोड़ी देर तक वह चाय की प्याली से ऊपर उठती भाप देखता रहा, फिर एकाएक झटके से उठ खड़ा हुआ। और अनु का गाल थपथपा कर बाहिर निकल आया। उसे मालूम था···यहां वह चाय नहीं पीएगा···अपितु चाय उसे पीएगी।

बाहर निकलते ही दिसम्बर की तीखी ठण्ड जिस्म में कांटों की तरह चुभी। कोट के कॉलर कानों तक उठाकर उसने एक सिगरेट सुलगाई और टेढ़ी-मेढ़ी गलियों से निकल कर मेन सड़क पर आ गया। थोड़ी देर तक वह सड़क के बाईं ओर चलता रहा। जब सब दुकानें पीछे छूट गईं, सड़क पार कर वह दाईं ओर चलने लगा। पुल पर पहुंच कर वह रेलिंग के सहारे खड़ा हो गया। उसकी नज़रें पुल के नीचे अंधकार में एक दूसरे को काटती पटरियों पर रेंगती हुई दूर पटरियों के गुच्छे में शंटिंग करते इंजिन पर टिक गई। अचानक मस्तिष्क में कीड़े की तरह कोई चीज़ रेंगी। किसी का फरफराता आंचल, खिड़की से लहराता हाथ। नज़रें वहां से हटा कर वह पुल के दूसरी ओर देखने लगा जहां अंधकार में जुगनू की तरह टिमटिमाता प्रकाश पुंज दिखाई दे जाता।

थोड़ी देर यूं ही खड़े रहने के बाद वह फिर चलने लगा। अब उसकी नज़रें सड़क के किनारे लगे साइनबोर्डों पर बने बच्चों, सिगरेट के विज्ञापनों तथा शरीर की नुमाइश करती लड़कियों के आदमकद चित्रों पर जमने का प्रयास करती रहीं।

"नहीं···वह अब इस सब से मुक्त होने की कोशिश करेगा···और कुछ करेगा··· सार्थक"। उसने सोचा। उसे प्रोफेसर खन्ना के शब्द याद आए जो उन्होंने बड़ी उत्फुल्लता से उसकी पीठ ठोंकते हुए कहे थे—"इस लड़के में बहुत प्रतिभा है, यह एक दिन ज़रूर कुछ करेगा।" एक बार ऐसा ही कुछ मैट्रिक में थर्ड डिवीज़न में पास होने पर स्कूल के हैड मास्टर ने, अपनी पैंट सभालते हुए कहा था—'यह साहबजादे ज़रूर एक दिन अपने वालिद का नाम रोशन करेंगे।' और जब बी० ए० में उस की प्रथम श्रेणी आ गई तो मामा ने कहा था—'अब यही अपनी बहन की शादी करेगा।' और प्रोफेसर खन्ना बिल्कुल आशंकित नहीं थे कि वह कुछ नहीं करेगा। 'उस में प्रतिभा है, वह ज़रूर कुछ करेगा।'

"मैं ढेर सारे बच्चे पैदा करूंगा।" सोचते ही अचानक एक निर्मुक्त ठहाका वीरान सड़क पर फैल कर खेतों में उतर गया। हां, मैं ढेर सारे बच्चे पैदा करूंगा, ढेर सारे बच्चे···विज्ञापन बोर्डों पर बने बच्चों जैसे—'उसने लगभग चीखते हुए दोहराया' मैं इस योग्य हूं कि 'ढेर सारे बच्चे पैदा कर सकूं—मैं 'ढेर सारे बच्चे···और बाकी के शब्द पीछे छूट गये। और पुल के नीचे से गुज़र रही ट्रेन की धड़धड़ाती आवाज में गुम हो गये।

रहा था ? वह यहां पढ़ाने आया है···वह अब अध्यापक है। यह ध्यान आते ही उसने पिछली जेब से पैन निकाल कर हाथ में ले लिया और पूरी तरह से अध्यापकीय मुद्रा बनाकर बैठ गया।

—लीजिए···आ गई आपकी अनु। उसने अनु के बैठते ही उसे काम दिखाने को कहा।

काम तो आपने दिया ही नहीं था।

"क्या मेरे देने से ही काम होता है ?" उसने डांट कर पूछा। अनु बेचारी घबराकर चुप बैठी रही।

"काम क्यों नहीं किया है" उसने एक डांट और लगाई और फिर स्वयं ही खिसिया कर उसे पुचकारने लगा।

"सर, आज हमने खूब मजे किए···हम पिकनिक पर गये थे। वहां हमने झील पर बहुत बड़े-बड़े कछुए देखे···इत्ते बड़े-बड़े"। दोनों हाथ फैलाकर उसने आकार बताया। अनु गीदड़ भभकी से मुक्त हो कर शुरू हो गई।

'सच'! बालसुलभ आश्चर्य प्रकट करते हुए उसने भी पूछा।

"अच्छा···सर आप रात क्यूं भाग गए थे···बगैर खाना खाए ? मम्मी ने आपके लिए भी खाना तैयार किया था।"

इस प्रश्न से वह बौखला गया। अनु लगातार बोले जा रही थी और वह याद करने की कोशिश कर रहा था कि पिछली रात खाना खाने के लिए उससे किसने कहा था। दिमाग पर बहुत ज़ोर डालने पर भी वह कुछ याद न कर सका। उसे अपने आप पर शक़ होने लगा। वह इतना भुलक्कड़ भी नहीं था कि·· वह झट से बतला सकता है कि किस वर्ष, कौन से महीने में, कितनी तारीख को, कौन दिन, कितने बज कर कितने मिनट पर वह पैदा हुआ था। फिर यह पिछली रात की घटना ही उसे क्यों याद नहीं आ रही। उसके दांत आपस में टकटकाने लगे। तभी चाय के लिए अनु की मम्मी आ गई। चाय के साथ ढेर सारे खाद्य पदार्थ। चाय रख कर वे अंदर चली गयीं। थोड़ी देर तक वह चाय की प्याली से ऊपर उठती भाप देखता रहा, फिर एकाएक झटके से उठ खड़ा हुआ। और अनु का गाल थपथपा कर बाहिर निकल आया। उसे मालूम था···यहां वह चाय नहीं पीएगा···अपितु चाय उसे पीएगी।

बाहर निकलते ही दिसम्बर की तीखी ठण्ड जिस्म में कांटों की तरह चुभी। कोट के कॉलर कानों तक उठाकर उसने एक सिगरेट सुलगाई और टेढ़ी-मेढ़ी गलियों से निकल कर मेन सड़क पर आ गया। थोड़ी देर तक वह सड़क के बाईं ओर चलता रहा। जब सब दुकानें पीछे छूट गईं, सड़क पार कर वह दाईं ओर चलने लगा। पुल पर पहुंच कर वह रेलिंग के सहारे खड़ा हो गया। उसकी नज़रें पुल के नीचे अंधकार में एक दूसरे को काटती पटरियों पर रेंगती हुई दूर पटरियों के गुच्छे में शंटिग करते इंजिन पर टिक गई। अचानक मस्तिष्क में कीड़े की तरह कोई चीज़ रेंगी। किसी का फरफराता आंचल, खिड़की से लहराता हाथ। नज़रें वहां से हटा कर वह पुल के दूसरी ओर देखने लगा जहां अंधकार में जुगनू की तरह टिमटिमाता प्रकाश पुंज दिखाई दे जाता।

थोड़ी देर यूं ही खड़े रहने के बाद वह फिर चलने लगा। अब उसकी नज़रें सड़क के किनारे लगे साइनबोर्डों पर बने बच्चों, सिगरेट के विज्ञापनों तथा शरीर की नुमाइश करती लड़कियों के आदमकद चित्रों पर जमने का प्रयास करती रहीं।

"नहीं···वह अब इस सब से मुक्त होने की कोशिश करेगा···और कुछ करेगा··· सार्थक"। उसने सोचा। उसे प्रोफेसर खन्ना के शब्द याद आए जो उन्होंने बड़ी उत्फुल्लता से उसकी पीठ ठोंकते हुए कहे थे—"इस लड़के में बहुत प्रतिभा है, यह एक दिन ज़रूर कुछ करेगा।" एक बार ऐसा ही कुछ मैट्रिक में थर्ड डिवीज़न में पास होने पर स्कूल के हैड मास्टर ने, अपनी पैंट सभालते हुए कहा था—'यह साहबजादे ज़रूर एक दिन अपने वालिद का नाम रोशन करेंगे।' और जब बी० ए० में उस की प्रथम श्रेणी आ गई तो मामा ने कहा था—'अब यही अपनी बहन की शादी करेगा।' और प्रोफेसर खन्ना बिल्कुल आशंकित नहीं थे कि वह कुछ नहीं करेगा। 'उस में प्रतिभा है, वह ज़रूर कुछ करेगा।'

"मैं ढेर सारे बच्चे पैदा करूंगा।" सोचते ही अचानक एक निर्मुक्त ठहाका वीरान सड़क पर फैल कर खेतों में उतर गया। हां, मैं ढेर सारे बच्चे पैदा करूंगा, ढेर सारे बच्चे···विज्ञापन बोर्डों पर बने बच्चों जैसे—'उसने लगभग चीखते हुए दोहराया' मैं इस योग्य हूं कि 'ढेर सारे बच्चे पैदा कर सकूं—मैं 'ढेर सारे बच्चे···और बाकी के शब्द पीछे छूट गये। और पुल के नीचे से गुज़र रही ट्रेन की धड़धड़ाती आवाज में गुम हो गये।

संकट

□ **तारा नेगी**

सुनूर काम समेटने के बाद रसोई की बत्ती बुझा कर कमरे में प्रविष्ट हुई। उसका मन अशांत था। पहले जैसी उमंग नहीं थी। पहले वह जल्दी-जल्दी काम समाप्त करके कमरे में आना चाहती थी जहां उसका पति महेन्द्र उसके इन्तज़ार में होता था। बच्चे सो चुके होते थे। उन दोनों के लिए यही समय एकान्त का होता था। आपसी बातचीत का मौका भी इसी समय मिलता था। दिन-भर महेन्द्र दुकान में बैठता और सुनूर घर के काम-काज में लगी रहती। एक छोटे से कमरे और रसोई के छोटे से घर में पांच बच्चों के साथ रहते हुए एकान्त की कल्पना भी बेमानी-सी लगती है। बस यही कुछ पल उनके अपने होते थे। महेन्द्र उसके आने से पहले ऐसे मुंह ढक कर सोया होता मानो गहरी नींद सो गया हो। मगर ज्यों ही सुनूर रसोई की बत्ती बन्द करती और दबे पांव कमरे में प्रवेश करती तो वह अपने ऊपर से रजाई हटा देता और वह उसके पास चारपाई पर बैठ जाती। दिन की तमाम ऐसी बातें इसी समय होती जो वह बच्चों के रहते नहीं कर पाते थे।

उनकी सुखी गृहस्थी में कुछ दिनों से ज्वार-भाटा आया हुआ है। आजकल वे एक-दूसरे से बचने की कोशिश करते हैं। सुनूर जान-बूझ कर धीरे-धीरे काम करती रहती है। काम खत्म होने पर भी काम का बहाना किए रसोई में बे-मतलब की खट-पट करती रहती है। उधर महेन्द्र भी सोने का बहाना करके लेटा रहता है। सुनूर जानती है कि वह सोया नहीं होता है। शायद उसकी तरह ही सोच में डूबा होगा। मगर उसकी हिम्मत कुछ पूछने की नहीं होती। हां, वह इस आशा से कई बार महेन्द्र की तरफ देखती है कि शायद वह ही बात शुरू कर दे या अपना फैसला सुना दे। उसकी खामोशी सुनूर को बर्दाश्त नहीं हो रही। इस खामोशी से बेहतर अगर वह अपना कोई भी फैसला सुनाता तो वह चुपचाप सह लेती। देशाचार के मुताबिक 'रीत' हो जाती और वह कोई दूसरा घर देख लेती। इस तरह जीने से बेहतर तो 'रीत' का फैसला ही होता। बहुत सारी औरतें दाल न गलने पर ऐसा ही तो करती हैं।

सुनूर ने कमरे की बत्ती बन्द की। वह बच्चों के बीच की खाली जगह पर लेट गई। सबसे छोटा बच्चा जो उसके साथ सोता है उसे अपनी तरफ खिसकाया दूसरे बच्चों को भी ठीक से कंबल ओढ़ा दिये। कमरे में ज़ीरो पावर के बल्ब की मद्धिम रोशनी पसरी थी सुनूर को नींद नहीं आ रही थी वह करवटें बदलती रही। छत को एकटक देखती रही। उसे अपने अन्दर की रोशनी उस ज़ीरो पावर के बल्ब से भी कम महसूस होती। इससे पहले ज़िन्दगी में उसने अपने बारे इतना कभी नहीं सोचा था। सुख-दुख को वह नियति समझती रही है। फिर ऐसा

क्या है जिससे वह इतनी अशांत है इसके लिए उसके अतीत में झांकना जरूरी है जो एक खुली किताब ही तरह फैला हुआ है। ज़रा सा भी अकेलापन सुनूर को उसी अतीत में घसीट ले जाता है जहां वह पहले पीछे मुड़ कर नहीं देखना चाहती थी।

सुनूर को याद आता है अपना बचपन जहां होश संभालने पर उसने अपने को एक 'दोघरा' (मुख्य घर से दूर दूसरा छोटा घर) में पाया था। अपनी मां और दो छोटी बहनों के साथ।

सुनूर के पिता दूसरे घर में रहते थे। अपनी दूसरी कद्दू की तरह फूली हुई बीवी के साथ। वह थी तो उसकी मां की ही चचेरी बहन यानी सुनूर की मौसी मगर अब उससे उनकी बातचीत भी बन्द थी। पिता उनके यहां कभी-कभार आते थे सुनूर ने तब भी अपनी मां को कभी शिकायत करते नहीं देखा। वह हमेशा चुप रहती थी। सुनूर जब जानने-समझने लगी तो उसे मां के चुप रहने का दुःख होता था। वह सोचती—मां हक के लिए क्यों नहीं लड़ती होगी? पिता को यहीं रहने को क्यों नहीं कहती होगी? मां के शांत स्वभाव के आगे उसे स्वयं कुछ पूछने की हिम्मत नहीं हुई थी। लोगों से सुनूर को मालूम हुआ था कि उसकी मां ने खुद ही पिता का दूसरा ब्याह करवाया था। वह भी अपनी चचेरी बहन से। मां की जब वे तीन लड़कियां हुई थी तो वह बहुत बीमार पड़ी। उन्हें दूर शहर के अस्पताल में दाखिल करवाना पड़ा था। तब पता चला कि मां के अब और बच्चे नहीं हो सकते। उसके बाद पिता दूसरा ब्याह करना चाहते थे तो मां ने अपनी चचेरी बहन से उनका रिश्ता करा दिया ताकि वे किसी गैर को घर में न लाएं। यह जानकर सुनूर अक्सर सोचती है—मां को क्या मिला अपनी बहन को सौत बनाकर? ससुराल में आते ही वह भी तो गैर ही हो गई है।

सुनूर की सौतेली मां के पूरे आधे दर्जन बच्चे हुए। उनमें भी पहले चारों लड़के। पिता को और क्या चाहिए था? उसकी मां की अब उन्हें कोई ज़रूरत नहीं रह गई थी। लड़-झगड़ कर किसी तरह पिता ने मां के नाम वह 'दोघरा' और उसके आस-पास की दो बीघे ज़मीन कर दी थी। तब से वे चारों वहां रह रही थीं। उस दो बीघा ज़मीन में गुजारा नहीं होता था इसलिए सुनूर को मां के साथ बाहर मज़दूरी करने जाना पड़ता था।

पन्द्रह सालों तक यही सिलसिला चलता रहा। इन सालों में स्थिति कुछ बदली तो इतनी कि तीनों बहनें बड़ी हो गई और मां और भी कमज़ोर होकर असमय बूढ़ी लगने लगी।

एक दिन सुनूर ने दरवाजे की ओट से सुना—"मैंने सुनूर की बात गार्ड के बेटे मोहन के साथ पक्की कर दी है। वे जल्दी ही इसे विदा करवाने आ रहे हैं। बात यह थी कि सुनूर का रिश्ता छोटी उम्र में ही मोहन से कर दिया गया था। सुनूर के पिता और मोहन के पिता बचपन के दोस्त थे फिर भी सुनूर के पिता को शक था कि अब मोहन के पिता बड़े आदमी हो गये हैं, उनका पूरे गांव में दबदबा है। कहीं वे अब अपनी बात से मुकर न जाएं।

दो महीने बाद ही सुनूर की शादी हो गई। शादी क्या! गांव के रिवाज के मुताबिक जोड़ी कपड़ों में ही मोहन और उसके पिता उसे घर ले आए।

ससुराल आ कर सुनूर की दुनिया बदल गई। वहां किसी बात की कमी नहीं थी। बड़ा परिवार था सुनूर मन लगा कर दिन-भर काम-काज में लगी रहती थी, उसे कोई चिन्ता नहीं थी। जीवन में पहली बार वह हर चीज से निश्चिंत थी। वह वहां सुखी थी। ऐसे में छः महीने कब बीत गए सुनूर को पता भी न चला। इन छः महीने में दो बार वह मायके गई थी। वहां

सुनूर को ससुराल में खुश देख कर सब फूले नहीं समाते थे। यहां तक कि उसकी सौतेली मां भी उससे ठीक व्यवहार करने लगी थी। शायद यह सोचकर कि अब सुनूर बड़े घर की बहू थी।

दुर्भाग्यवश सुनूर की यह खुशी ज्यादा देर तक न रह पाई। उसका पति मोहन बीमार पड़ गया। वह कई महीने बीमार रहा। जब वह नीम-हकीम की दवाइयों से ठीक नहीं हुआ तो झाड़-फूंक शुरू हो गई। शहर के अस्पताल में भी दिखाया गया। वहां के इलाज से वह धीरे-धीरे ठीक भी होने लगा था। मगर झांड़-फूंक फिर भी चलती रही। इस बीच किसी पंडित ने कहा कि यह औरत ठीक नहीं है। जब तक यह इस घर में रहेगी मोहन ठीक नहीं होगा। आधुनिक सम्पन्न दिखने वाले परिवार के लोगों ने इसे सच माना और एक दिन सुनूर को घर से बाहर कर दिया। वह फूल की टहनी से तोड़ी गई कोमल कली किसी को कुछ न कह पाई। अपनी किस्मत को कोसती रही।

सुनूर मां से लिपट कर खूब रोई थी। मां ने भी उसे ढाढस बंधाने में कोई कसर नहीं छोड़ी। कहा कि शायद वे लोग बाद में तुझे बुला लें। हालांकि मां भी जानती थी कि अब यह सम्भव नहीं होगा। आधुनिक दिखने वाले इस बड़े घर में पढ़े-लिखे लोग भी काफी थे, लेकिन संशय की जड़ें काफी गहरी थीं!

पांच साल निकल गए। मन में ज़रा-सी आशा भी रहती थी कि शायद उन लोगों का मन बदल जाए। मगर ऐसा कुछ नहीं हुआ। मोहन ने दूसरी शादी कर ली थी। सुनूर भी पिछली बातें भूल-सी गई थी। वह याद भी नहीं करना चाहती थी, जिसे दिल से चाहा था, जिसके लिए अपना सब कुछ न्यौछावर कर दिया था उसी ने जब उस की खबर नहीं ली तो और किस को दोष देती? गांव की गऊ बेटी की तरह चुपचाप सब सह गई।

सुनूर ने अब घर से बाहर निकलना भी शुरू कर दिया था। हालांकि अब उसे पहले की तरह बाहर मज़दूरी आदि करने में शरम आती थी। यह काम उसकी मां और बहनें करती थीं। वह खेती-बाड़ी और घर का दूसरा काम करती थी। अब वह काफी सहज भी होने लगी थी। उस की उम्र के मर्द उसमें दिलचस्पी लेने लगे थे। एक बार उसकी मुलाकात पास के गांव के प्रेम से हो गई। वह मोहन की तरह पढ़ा-लिखा तो नहीं था उसकी तरह ही अनपढ़ था। मगर खूब हट्टा-कट्टा जवान था। कई मुलाकातों ने उन्हें एक दूसरे के करीब लाया और एक दिन दोनों ने मंदिर में शादी कर ली। ससुराल में सुनूर का स्वागत किया गया। सुनूर की ज़िन्दगी में फिर एक नया मोड़ आया। वह अपने को एक बार फिर सुरक्षित महसूस करने लगी थी। प्रेम चार बहनों के बाद अकेला भाई था। इसलिए घर में उसे सबसे लाड़-प्यार मिलता था। वैसे भी परिवार सम्पन्न था।

एक-एक करके तीन साल बीत गए मगर सुनूर की गोद नहीं भरी। सुनूर को चिन्ता सताने लगी। प्रेम भी इस बात से दुःखी रहने लगा। घरवालों का रवैया भी धीरे-धीरे बदलने लगा। वे अक्सर ताने देने से न चूकते थे। प्रेम बिना वजह सब से लड़ाई-झगड़ा करता रहता था। झांड़-फूंक भी काफी की मगर कोई फायदा नहीं हुआ।

एक दिन वही हुआ जिसका सुनूर को शक था। प्रेम भी सौतन को घर लाया। सौतन के बाद सुनूर केवल काम करने वाली मशीन बनकर रह गई। घर-बाहर के सब काम उसके जिम्मे थे। सौतन से एक साल में ही प्रेम का बेटा हो गया। दो साल बाद दूसरा। सुनूर खुश थी कि चलो, अपने नहीं तो यह भी बच्चे ही हैं। प्रेम भी अब उसकी तरफ कुछ ध्यान देने लगा

था। मगर सौतन को यह बातें खटकने लगी। बच्चों को प्यार-दुलार करने पर टोकती। वह यहां तक कह देती कि यह बांझ मेरे बच्चों को नज़र लगाएगी। प्रेम को भी उससे ज्यादा नहीं मिलने देती थी।

एक बार उसकी एक सहेली उसे ज़बरदस्ती उनके घर से काफी दूर से एक बाज़ार ले गई। वहां उनके गांव का एक आदमी मंगल रहता था। उसकी अपनी दूकान थी और उसके पांच बच्चे थे और उसकी बीबी का स्वर्गवास हो चुका था। उसकी सहेली महेन्द्र की बहन थी। वह सुनूर की हालत भली प्रकार जानती थी। इसीलिए वह उसे महेन्द्र के पास लाई थी। सुनूर को बिन मां के बच्चों पर बहुत दया आई। वह उन्हें प्यार-दुलार करने लगी। इसी आकर्षण में वह बार-बार वहां आने लगी। बच्चों से वह खूब घुल-मिल गई थी।

एक दिन महेन्द्र ने सुनूर को साफ-साफ शब्दों में कहा—मेरी बहन ने तुम्हारे बारे सब कुछ बता दिया है। अगर तुम बुरा न मानो तो मैं तुम से शादी करना चाहता हूं। जिस घर के लोग तुम्हें ठुकराने पर तुले हैं वहां रहने का कोई औचित्य भी नहीं है। मुझे तुम्हारी ज़रूरत है और मुझ से भी ज्यादा इन बच्चों को एक मां की ज़रूरत है।"

सुनूर सोच-विचार की गहराई में डुबकियां लगाने लगी। वह निर्णय नहीं कर पा रही थी। एक दिन घर में महाभारत छिड़ा तो सौतन ने उसे घर से बाहर धकेल दिया और उसने क्षण भर की भी देर न की और सीधे महेन्द्र के पास आ गई। दोनों ने बाकायदा विवाह किया। इस तरह उसका तीसरा विवाह हो गया जबकि उम्र अभी भी पचीस-तीस से ऊपर न थी।

पिछले तीन सालों से सुनूर इसी घर में राज कर रही है। यहां उसकी मर्जी के बिना पत्ता भी नहीं हिलता। पति का निश्छल प्यार और बच्चों की मीठी-मीठी बातें निहाल कर देती हैं। यहां पहले दो घरों जैसी सुख-सुविधाएं तो नहीं हैं मगर सुनूर के लिए बच्चों के होने का सुख सबसे बढ़ कर है।

बात इतनी ही होती तो फिर कहना ही क्या था। सुनूर को और क्या चाहिए था। मगर हाय री उस की किस्मत। यहां भी कुछ दिनों से उसकी रातों की नींद और दिन का चैन छिन गया है। कुछ दिनों पहले वह बीमार पड़ गई थी। पास ही एक अच्छा अस्पताल है। उसे वहां भर्ती करा दिया था। डाक्टर ने उसका पूरा चैक-अप किया। जब वह ठीक हुई तो डाक्टर ने उसे बताया कि एक छोटे से आपरेशन के बाद मां बन सकती हो। सुनूर खुशी के मारे उछल पड़ी। मगर यह खुशी उसके पास ज्यादा देर न रह सकी वह सोचने लगी—क्या अब उसे सचमुच ऐसी किसी बात से खुश होना चाहिए। महेन्द्र यह बात सुनकर जैसे पत्थर हो गया था। वह न तो हां कहता और न ही न कह सका। आजकल वह बहुत कम बोलता है। सुनूर उसकी परेशानी जानती है। वह सोचता होगा कि उसके अपने बच्चे होंगे तो क्या वह उन बिन मां के बच्चों को वही प्यार दे पाएगी जैसा वह दे रही है। महेन्द्र ने तो उससे शादी ही इस लिए की थी कि वह बांझ थी। मगर सुनूर क्या करे? उसे कुछ समझ नहीं आ रहा। वह सिर्फ एक बार मां बनने का सुख महसूस करना चाहती है। जिसके लिए प्रेम ने उसे ठुकराया वही उसे इस घर में मिल सकता है, जहां इसकी ज़रूरत नहीं है।

प्रिय पाठको! सुनूर मेरी बहुत प्यारी सहेली है। आप लोगों ने उसका संकट जान लिया है। जहां वह विवाहित होकर गयी, उन तीनों घरों में उसने क्या कसूर किया, यह बात उसकी समझ में नहीं आ रही। अब वह आगे क्या करे इस बात का फैसला भी वह नहीं कर पा रही। क्या आप लोग इस बारे सोचकर कुछ हल निकाल सकते हैं। यदि हां, तो इसके लिए मैं भी आपकी कृतज्ञ हूंगी।

[बंजार, कुल्लू-हि० प्र०]

कविता

तीन कविताएं

□ प्रयाग शुक्ल

शहर की ऊंचाई से

शहर की ऊंचाई से देखे मैंने पेड़
शहर की ऊंचाई से देखे मैंने बादल
देखा शहर की ऊंचाई से धुआं
शहर की ऊंचाई से
देखी सड़कों की रफ्तार—
सब कुछ खुशनुमा लगा
शहर की ऊंचाई से।

उड़ती हुईं चिड़ियां
उड़ने-उड़ने को धूप
शाम की पत्तियों से—

शहर की ऊंचाई से
देखे जोड़। लोग।

आई फिर उन्हीं
सीढ़ियों की याद पर,
जो ले जाती थीं नीचे-

देखा उनकी तरफ—
दरवाजा खुला था।

खुली और सांस।

एक शाम को

वह शाम का एक चोर-दरवाज़ा था
पार्क के एकांत में।

चींटों में आकर मिला जा रहा था
रात का रंग।

एक वायुयान जा रहा था उड़ता हुआ
ऊपर—आकाश पर पहली बत्तियां !

ढिबरियां घरों की आईं याद।
सुदूर।

बहुत दूर थे बरस दिन माह
और उनमें लोग।

आ टिके अपने ही दिन घास पर
जिनमें बचे थे कुछ ही साबुत।

बसों की घरघराहट और
वाहनों के शोर के बीच
आकाश था एक अनवरत
सिलसिला—

हिला
धीरे से एक पेड़।
मैंने ली एक करवट।
पेड़ की कोई करवट
नहीं होती
उसकी नींद में भी नहीं।
रहता है खड़ा
आकाश के नीचे
जड़ें फेंके
धरती में
जब तक कि है।

सूर्यास्त से पहले

सूर्यास्य से कुछ पहले
चमकती हैं गाड़ियों की छतें—
किन्हीं खास रंगों में।

ढाबे के बर्तन सब
धुलने की प्रतीक्षा में।
जाते हुए दिन की
अजब कौंध लिए—
कांच की खिड़कियां।

[बी-53 ग्रेटर कैलाश-1; नयी दिल्ली-110048]
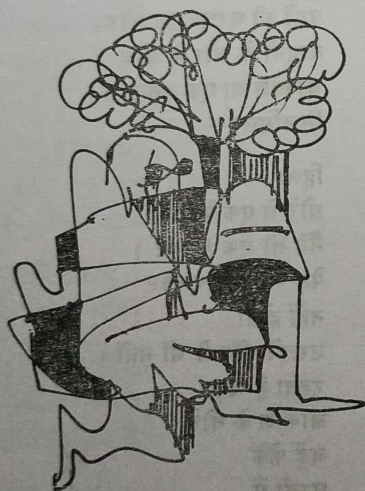
तीन कविताएं

□ केशव

इन दिनों

इन दिनों
हवा बहती है
गुमसुम
उदास
पत्तों को सूझता नहीं कुछ
खेलें किससे
झुलस रही उनकी बातें
घरों पर मडराती
एक बेचैन कला

देखने ही थे ऐसे दिन भी
शहर को
जंगल के मुंह में आग
फुनगियों पर धुआं
कर्जे में डूबी है प्यास
शहर का इतिहास
गवाह है
कि उन्होंने
गिरवी नहीं रखा नदी को

चेहरे ही चेहरे
दरअसल
हर चेहरा बदल गया है
एक कमरे में
और कहीं-कहीं तो
चारपाई में

बच्चे

धूप में नहाते हैं बच्चें
धूप की नदी में
कागज़ की नावें चलाते हैं बच्चें
धूप में पतंगों की तरह
उड़ना चाहते हैं बच्चे

धूप में बिलखते हैं बच्चे
भरी दुपहरी में
घर से निकल निकलकर
आखिर कहां जाते हैं बच्चे

तड़के की सिल पर

सबकी
दिन भर की यात्रा के लिए
करना है उसे एक रथ तैयार
तड़के की सिल पर
पीसकर अपनी नींद
ढोरों से लेकर
इन्सानों तक की
भूख की मांद में
उतरना है उसे
कड़छी-पतीले
घड़े
और दराती के साथ

कुक्कड़ की बांग
उसे बना रही है मशीन
पर हाथ-पैर हैं
कि मुए चलते ही नहीं
घुटनों में
जमकर बैठ गया है
पिछले साल
मुन्नु होने के बाद से
मुस्टंडा स्याला

लो
चिड़ियों की पहली डार भी
उड़ गई छन्न पर से
और अभी चार ठार ढोर
खूंटा उखाड़ फेंकने को
हो रहे उन्मत्त
हरिओम्
हरिओम्
हे मालिक
बस तू ही तू है
किसी की नींद में
पड़ गई है दरार

इधर काम है बहुत बाकी
अभी लपकेगी
किरली की तरह
उसकी तरफ फटकार
दिन भर के सफर के लिए
अभी की नहीं तुमने तैयारी
कैसे घर से है तू
वह सुनती है
और लकड़ी होते हाथों से
जलाने लगती है चूल्हा

अब तो उलझ गया है
बीते दिनों का
ऊन का गोला
फिर भी
फुरसत के पलों में
कुछ टुकड़े निकाल
बुनने लगती है
पत्थर की तरह ठंडी और सख़्त
तकलीफों के लिए
एक जोड़ी मोज़े
सुख ने उसे

बहुत कुछ दिया है
दुख के यहां से भी
नहीं लौटना चाहती,
खाली हाथ

फिर भी क्या है
कि दुख की पटरी पर
गर्दन धरे
चुपचाप लेटी है

[पाईन हिल काटेज, शिमला-171002]

दस कविताएँ

□ वंशी माहेश्वरी

उखड़े मन में

अधिकांश के कुछ अंश
कुछ गृहस्थी के अधूरेपन
पूरे हो जाने की अपर्याप्तता के बारे में
सोचता रहा

लाग-लपेट होती रही संभावनाएँ
उखड़े मन में
अलसाये परिन्दे की तरह
फड़फड़ाता रहा दिन
अचानक आते-आते
चला जायेगा !

आकारहीन

मेरी दुनिया जितना
उसका आकार
आकारहीन होती गई दुनिया

मैं विस्तीर्ण हो रहा
अर्जित समय में
रचता रहा
अपनी मुक्ति
युक्ति के स्वप्न
दुःस्वप्न !

शब्द जितना अर्थ

शब्द तक आते
शब्द जितना अर्थ
सहेज कर
अंकित होती हैं कल्पनाएँ
सपनों की पूरी दुनिया
अपलक भर जाती है

शब्द नहीं है
कह / सह सकूं
प्रतीति
या असह्य दुर्निवार।

दृश्य

टूटता है
सर्वस्व
वर्चस्व
एकांत अकेलापन
आँखों का उनींदा कच्चा पुल

टूटती है
सहने की अथाह शर्म

बदल जायेंगे
दृश्य
जो दृश्य होकर चित्रित हैं
या जो दिखाई देने पर भी
अदृश्य
हो जाते हैं।

जोख़िम

सुबह-सुबह समय
पुतलियों में चिपचिपाता
उठता है

प्रमुदित आकाश से
झरता है सूर्य प्रकाश
आलोकित शब्द की चितवन
बेलौस सत्य में
व्याकुल होती
दिनारम्भ में
भर देती है जोखि़म ।

शब्द

जर्जरित सुख की संभावनाएँ
संचित पीड़ा में
खण्डित बिम्बों में
आदिम अर्थ भरती है

जीवन का
अनंत प्रवाह
शब्द में
बहता है ।

अस्वीकार

चीज़ों के साथ
संसक्ति बनती है
कुछ समय पश्चात्
पश्चात्ताप झरने लगता है

कुछ भी संभव है
अपने ही अस्वीकार
खुद की छाया में बढ़कर
पाट देंगे
आने-जाने का रास्ता ।

अखण्डित

किंवदंतियाँ फैलती रहीं
परिवर्तन काँपते रहें

अपनेपन की निस्संग यात्रा
टूटती बिखरती
शून्य में ततदील होती रही
अखण्डित
मनुष्य का स्मारक
मनुष्य से
बाहर और परे होता रहा ।

अधूरी

मुड़कर देखना
स्मृति की साँसों के प्रवाह में
ठहर जाना है
जहाँ अधूरी चीज़ें
समग्र होने के
प्रतीक में
अर्पित होकर भी
अधूरी
रह जाती हैं ।

सम्पूर्ण

सम्पूर्ण होते-होते
बच जाता है मनुष्य
मनुष्यों के बीच ।

[57, मंगलवारा, पिपरिया (म० प्र०) 461775]

चार कविताएं

□ अरविन्द रंचन

पूर्व संकेत

मौसम ने बिगड़ने से पहले ही
सयाने बच्चे की तरह
दिखा दिए अपने लक्षण

आकाश बैठा मुंह फुलाये
दिशा काटती है कन्नी
मिलाती नही आंख

होगी उठा-पटक
        कूद-फांद
छोटे-छोटे पांव खेलेंगे
बादल के गुद में
        धुंध की चादर
                चुनर धूप-छांव की

आने वाले धावक से
सतर्क
नाले की चट्टान तले
सोये हुए परजीवी रेशे
अपनी पकड़ करेंगे मज़बूत
पूरे मन से लिपट जाएगी बेल
                शाख-शाख
पेड़ हो जाएगा पसीने से तर

कौवा शैतान बाजीगर-सा
रस्सी पर टंगा
दिखाएगा कलाबाजियां हवा में

देखते ही देखते खला में
गुम हो जायेगा गैस का गुब्बारा
शाम का धुंआ उतरेगा ढलान
चिड़िया लौट आएगी घर
सयाने बच्चे की तरह
सपने में देखेगी
चांद के गिर्द
प्रभावमण्डल

दुरंगा शव

कोर पर दो बूंद खारा पानी
माथे पर बहता पसीना
गांव पर बरसेगा आकाश
हमारी जात
और खून का अंधेरा

यह तय है संयोग नहीं
मिट्टी निगल जाएगी हड्डियां
उर्वर होगी जमीन
बैठ पहरा देगी छाया
जग्गन के खेत का
और फैलेगा आतंक
स्थिति हो जाएगी
देव-अधीन

आखिर कब तक
मांगता रहेगा मन्नत तू
मेरे सुख की

बचपन में डरता था मैं
बरगद के पेड़ से
टिक्कर वाली बावड़ी से
नाग के जंगल
और शिबू पुजारी से

बरगद हो गया जग्गन
अहाते में हवेली के उसने
पाल रखे हैं भूत
मौसी बाबड़ी की चुड़ैल
चिल्लाती है पूरे स्वर में
तोड़ती है रात का सन्नाटा
और निगल जाना चाहती है मुझे
जंगल से होकर आती हवा
शिब्बू नचाता है चेला
जिह्वा पर मेरी
घोंपता है तिल्लियां
गांव कहता है हवा है कि छाया

आखिर कब तक
घूमता रहेगा तू
पीठ पर लादे प्रेत
देखता रहेगा आंख फाड़
मौसी को आई खेल
रगड़ता रहेगा माथे से
मंदिर की सीढ़ियां
अपना भाग

लेकिन दादू
यह तय है संयोग नहीं
मैं गांव छोड़ रहा हूं
भौंचक्का सा मैं
अब और नहीं ढो पाऊंगा
दुरंगा शव छलेड्डे का

देहरी

गांव की बूड़ी चौहदी के बीचोंबीच
विशाल बरगद के घर
भूत पिशाच के जादू टोने
भय के अंधे सायों झूलती

कभी कभार होती है कोई आवाज रुखसत
बदल जाती है जन आन्दोलन में

एक युवक
भुरभुराती पुरानी इमारत की मिट्टी से
शहादत की मांग भर
खून सना अंगूठा दिखा
शहीद हो जाता है

बरगद की देहरी पर
गुर्राती है दादा की आवाज
साला हरामजादा देश का गद्दार
आए तो फेंक देना गटर में
कोई मर्यादा होती है घर की भी
हमने भी लड़ी सन सैंतालीस की लड़ाई

आज भी उकड़ू बैठे हैं दादा
गांव के जलसे सम्मेलनों में
तमाशा बन गया है सन सैंतालोस
बढ़ आई हैं दीवारें
जिन पर
चिपके रहते हैं इश्तिहार
दोहराता है इतिहास
बैठ बरगद के तले
होहल्ला-भीड़
युवा-संत्रास
फैलता है भय
पर्चे
वारण्ट
गिरफ्तारियां
लाठी-चार्ज

कब लौटेगा बरगद से
सन् सैंतालीस का प्रेत
न दादा आए न पोता आया घर
चूल्हे पर पड़ा खाना हो गया बासा

मां बहनें आज भी देर रात
करती हैं इन्तजार

बर्फ़ का अँधापा

(1)

खिली धूप में
भेदता बर्फीला पहाड़
दृष्टि तैरती
चांदी का वर्क
सूर्य सालता
हिमवर्तिका का कांच
बर्फ की झिलमिल
चमक कांच की
चुभन बन पलक में
कोर पर काजली
ले डूबी आंख

(2)

दृश्य
धूप-चश्मे पर
उतर आने को लालायित
आंख में
बींध गया शूल

नेत्र बिन्दु में
जल रहा है
हिमखंड
गल रही है
बर्फ

(पर्वतारोहण संस्थान, मनाली, हि० प्र०)

चार कविताएँ

□ सतीश धर

मेरे लिए

मेरे लिए कसमें उठाने वालों में
शहर का एक मजदूर भी है
एक औरत
और एक नन्हा बच्चा भी
मेरे लिए
सांसें जुटाने वालों में
फूल भी हैं
पत्तियां भी

और हवा भी।
मेरे लिए
दिन भर की थकान के बाद
मीठी नींद में
सपने संजोने वालों में
मां की धुंधली तस्वीर भी है
पिता का रौबदार चेहरा भी
और नन्हें मुन्ने का
आगे बढ़ता कदम भी।
मेरे लिए बहुत कुछ जरूरी है
शहर का मजदूर भी
औरत
नन्हा बच्चा
फूल
पत्तियां और हवा भी
आखिर ज़रूरत के वक्त

कुछ भी तो नहीं रहता पास
एक अनुभव
और एहसास
कविता के लिए
जो ज़रूरी भी है।

बूढ़ा बरग़द और बकरियां

हैरान
परेशान और चिंतातुर
सम्पर्क सूत्र
बूढ़ा बरग़द
चिल्लाता—
सारे मौसम नहीं
करते साज़िश एक साथ
जब धूप होगी
शर्त्तिया नहीं होगी बारिश
और जब होगी बरखा
लाज़मी है
तब नहीं जलेगा चूल्हा।
दलीलों से भर जाती
बरग़द की झोली।
लगता उसे
अभी कहीं रूकेगा
गर्म हवाओं से खुद को सहलाने के लिए
पनाह लेता
बकरियों का झुंड
जिनके लिए संजो कर रखी है
बूढ़े बरग़द ने ताजा ख़बर
अचानक हिला बरग़द
चिल्लाई बकरियां—
जो ख़बर तुम तक पहुंची है
उससे नहीं होती है बौखलाहट
दरअसल
खबर लेकर आती मारधाड़

या अचानक
मांगों के समर्थन में
निकले जुलूस पर
गोली चलाने का शुभ समाचार।
हम बकरियां हैं
बूढ़े बरग़द !
हमें चाहिए ख़बर
उस पौष्टिक घास की
जिस पर लगी हो
प्रमाणीकृत होने की मोहर
बार-बार जुगाली कर इस घास की
नहीं होता शक़
गति पर विकास की
इसकी बढ़ती ख़पत पर
मुस्कराता
कृषि विश्वविद्यालय का सूचना अधिकारी।
बूढ़े बरग़द !
हम बकरियां हैं
हमें तलाश है घास की
नहीं मालूम है तुम्हें
भूखा ढूंढ़ता नहीं सुनहरे
शब्दों की इबारत
बकरी
ढूंढ़ती सिर्फ घास
या कसाई की तलवार
बूढ़े बरग़द !
बेमानी है तेरा प्यार।

ऐसा क्यों होता है

ऐसा क्यों होता है
जब भी सपने में
मैं घर बनाता हूं
एक अजनबी
अच्छे पड़ौसी की तरह समझाने लगता है

घर की सुरक्षा पर ज़रा ध्यान दें
खिड़कियों पर पर्दे
और
सलाखें लगाइए
दरवाज़ों पर चिटकनियां और ताले
देश की हालत पहले से बेहतर है।
अनसुनी कर देता हूं आवाज़
चिल्लाता वह
दोहराता ऐलान
सुरक्षित घर में
सुखी रहता है आदमी
जैसे बंद किले में क़ैदी
सुरक्षा की दीवारों से जुड़ी है
ज़िन्दगी
कायर शब्दों की इबारत से नहीं
झरझर्राता स्वप्न
ढूंढ़ता नई कड़ियां
घर की सुरक्षा में
अजनबी का हाथ
एक दुःस्वप्न
बनाता सपनों का संसार
ऐसा क्यों होता है
वह अजनबी
मुझे हर बात पर टोकता है।

सफ़दर के नाम

बहुत परेशां करता है
शरीफ़ आदमी
जलसों और नारों के बीच
सदमों और हादसों के बीच
सुना के दर्द के गीत
बहुत परेशां करता है शरीफ आदमी
मैंने जब-जब रोका है उसे
हथेलियां खोल कर दिखाए हैं घाव

एक ही बात दोहराई उस पगले ने
अपने और मेरे बीच
एक लक़ीर तो खींच
फिर देख कितने हाथ
शाबाशी देते हैं तुझे
तू भी तो मेरा ही खून है
सफ़दर
सड़क पर गिर गया तो क्या हुआ
मानले दोस्त
अब के मैं भी चलूंगा
तेरे साथ
देखता हूं
अफ़सर कहां रुकेगा

[जिला लोक संपर्क अधिकारी, सिरमौर नाहन-हि० प्र०]
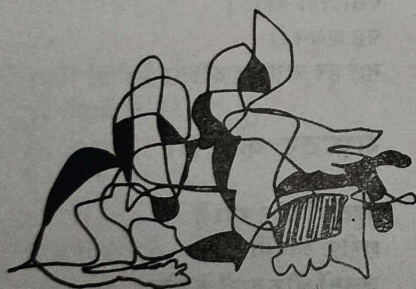
दो कविताएं

□ पीयूष गुलेरी

शून्य बोध

कुछ लोग कहते हैं—
शून्य बड़ा दुखदायी होता है
वह अपने बृहद् सर्पाकार घेरे में
कसकर बांधता जाता है
और फिर
एक अजीब कसावट का भान कराकर
प्राण सूंघ जाता है।
धीरे-धीरे अपने उदर में
सशरीर निगल जाता है
स्थावर और जंगम ही नहीं
समूचा इतिहास निगलता है
डकारता तक नहीं

लेकिन—
मैं सोचता हूं
शून्य बड़ा शुभ है
विनम्र और विनीत
समभाव से
सुख-दुख, पीड़ा-क्रन्दन, शुभाशुभ
सभी को आत्मसात करने की
क्षमता रखता है
महार्णवी गंगा है उसका उदर
शीतल, तरंगित, शाश्वत और पवित्र
जिसमें अनेकों युगों का
अस्थि-विसर्जन हुआ है

शून्य बड़ा शुभ है
निगल कर उगलता
उज्ज्वल प्रभात
ममतामय गीत
थिरकता संगीत
और जन्मता नई चेतना

ओ मेरी चेतना
लोगों की कथा को
मेरी शून्य व्यथा को
अंतिम संगीत होने दो
शून्य में खोने दो
ओढ़े हुए तथाकथित सदाचार
मुस्कराते शून्य का
अंतिम हास होने दो
मेरा शून्य-बोध

विश्वास नहीं आता

यह ठीक है
तुमनें मेरे अबोध अरमानों का
गला घोंटा है
और
शिशु-आशाओं की शुभ्र रश्मियों का
नाश किया है
पाश-पाश कर दिया है हृदय की धड़कनों को
विस्मृति की तूलिका से
भावना की रस-मूर्ति को
क्रोध मसि से पोत कर रख दिया तुमने

ढह गयी है मेरे मन की मीनार
बस, अस्थि-पंजर रह गया है
भग्न हैं आस्थाओं की दीवारें
मन का मृग व्याकुल, तड़पकर अधमरा
खूब रंगरलियां मनाते

संस्मरणों के श्रृगाल
घूमता-फिरता धरा पर
विषाद विष में विस्मृत
इक पिंड बनकर
जर्जरित-सा अस्थि पंजर
देखने में भयंकर

फिर भी
तुम्हारे आकृष्ट न होने
और
अपने आकर्षण खोने पर
विश्वास नहीं आता

(रा० महाविद्यालय, धर्मशाला हि० प्र०)
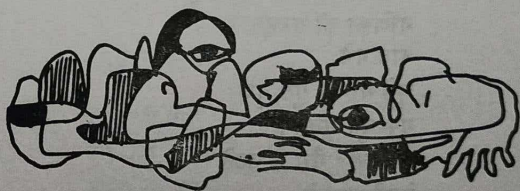
दो कविताएं

□ दीनू कश्यप

छावनी

यह जानते हुए भी
कि यहां की सुथरी सड़कों पर
बसता है बूढ़ा सियार
बार-बार लौट आता हूं
छावनी में

निरापद जगह होती है छावनी
जहां कुत्ते नहीं भौंकते
देर रात किसी पहर
अपने ही साये पर
चिल्लाते हैं संतरी

अक्सर वह सजी रहती है
गणिका की तरह
रात गये
चूने गेरू से पुते वृक्ष
गुप-चुप सुनते हैं
आफिसर मैस से उठते
बेसुरे कहकहे
और पहरे पर खड़ा सिपाही
ठोकर मारता है
कोलतार पर जमे रोड़े को

झक-झक सफेद बगूलों-से
होते हैं अफसरों के बंगले
लकदक फूलों से घिरी बगिया में
लोट-पोट होती हैं मेम साहिबें

ओल्ड बॉय (सीनियर अफसर) के मसखरे पन पर
बंगले के पिछवाड़े में तब
सूखती है पसीने से तर
किसी लाँस नायक की कमीज़

यह कोई हैरानी की बात नहीं
कि सजी-संवरी छावनी में
आने से घबराती हैं औरतें
दरअस्ल
छावनी में जब भी कौंधती है
कोई मादा आवाज़
तो हिनहिनाते हैं छावनी के घोड़े

छावनी के चौराहे पर
सजा रहता है
दुश्मन देश का टैंक
जिसमें पैबस्त आदमी की गंध
क्रोध में दहाड़ती है
फिर एक चीख के साथ
हर ऐरे-गैरे को
घिघियाती हुई कहती है—
हज़ूर सलाम
भाई राम-राम

ऐसा भी नहीं
कि यहाँ बसती हैं
चीख़ या दहाड़
छावनी का होता है अपना पंडित
अपना मास्टर
होते हैं हरे-भरे मैदान
जहाँ चरते हुए डरती हैं गउएँ
लेकिन निडर होकर टहलते हैं
छावनी सूअर

केलों के पत्तों से स्थिर
खड़े रहते हैं परेड में फौजी

मगरमच्छ-सी निढ़ाल
पड़ी रहती हैं बख्तरबंद गाड़ियाँ-तोप
ये सभी हिलते हैं
हुक्म की कड़क आवाज़ पर
और तब आदमी
घिस्साने लगता है अपने हाथ
सहलाते हुए लोहे को
एक-दूसरे के खिलाफ़

छावनी में कोई अकेला नहीं होता
न ही होता हैं कोई बेघर-बार
एक भरोसेमंद माँद है छावनी
जहाँ हर कोई
हाँफता है पड़े-पड़े ।

भैंस

1

कीचड़ में ठंडक पाती
बैठी है भैंस
उसकी पीठ पर है
बगुले अनेक
वे गुदगुदाते हैं
आत्मीयता जताते हैं
बेसुरा-सा कुछ गाते है

आतममुग्ध भैंस
हिलती है डुलती है
कीचड़ से उबरे कीड़ों को
बगुलों की चोंचें बीनती है ।

2

सामाजिक है भैंस
दूध देती है
चरती है घास
गोबरती है ढेर सा

सुस्ताते हुए कीचड़ में
वह कोसती है दुर्भाग्य
अपने नीचे दबे कीड़ों का ।

3

भैंस लाचार है
मक्खियों की मार से
विपदा की इस घड़ी में
नाकारा साबित होता है
सींग-सा कारगर हथियार
कुछ दूर तक पीटती है
वह पूंछ से उन्हें
लेकिन मक्खियाँ—
लौट आती हैं बार-बार
उठकर इसी के मलमूत्र से

इस बार पहले से ज्यादा
सजगता के साथ
बैठ रही हैं मक्खियाँ
सींग-कान-पूंछ की पहुँच से बाहर
खोपड़ी के किसी हिस्से में
आतममुग्धता पर डालती खलल ।

[भगवान मुहल्ला मंडी, हि० प्र०]

चार कविताएं

□ प्रकाश पंत

चिन्ता

चिन्ता
गन्दे नाखूनों की तरह
हर चीज़ को पकड़ने से पहले
विद्यमान रहती है—

चिन्ता
स्कूल में मौजूद
क्रूर डण्डे की तरह
मास्टर की गैरहाज़री में भी
मेज़ पर आसीन।

पृथ्वी

माँ की छाती सी कोमल
पवित्र
पिता की पीठ सी ठोस
कद्दावर
मेरी यह पृथ्वी
समुद्र में तैरती रहती है
मेरे हाथ इसे थपथपाते रहते हैं।

इस तरह यह पृथ्वी—
धीरे-धीरे
मेरे भीतर आ बसती है चुपचाप।

इन्टरव्यू के केन्डीडेट

हम पांच लड़के
मैट्रिक पास, थर्ड डिविज़नर
बैल से तगड़े—
इन्टरव्यू देने जा रहे हैं।
घर से बांध ली हैं कचौरियां
झोले में रख लिए
काबलियत व करेक्टर के सर्टीफिकेट—
सिर पर आशीर्वाद के फूल।
शरीफ बच्चे जब स्कूल पढ़ते थे
रोज़ खाते थे मार
और छुप-छुपकर पीते थे बीड़ियां
मास्टर को लाते थे कच्ची शराब
नकल मारकर हुए थे पास।

मां-बाप
अध्यापक
और हम
सबके सब चरित्रवान
प्रमाण-पत्रों की तरह।

सुख

बसन्ती फूल बगिया में खिले
बच्चे ने उड़ाई पतंग
एकदम निहारता रहा
आकाश में अपना पतंग
आकाश तक ऊंचा उड़ता बच्चे का मन

एक स्नेहमयी चेतावनी
कि गिर जाएगा
पतंग मत उड़ा
मान जा
स्कूल का काम कर ले।

पर कहाँ उसने सुनी
माँ की गुहार
वह हंस रहा था
बसन्ती फूल-सा
वह स्वप्न सुख-सा मधुर
आकाश में उड़ना

सभी कुछ जो रहा होगा
विश्व में उस क्षण
व्यर्थ था—निष्प्रयोजन
सत्य था तो आकाश था
डोर थी—पतंग था।

[थनेड़ा, मंडी हि० प्र०]

क्या हिंदी क्लिष्ट भाषा है ?

□ डा० सत्यपाल शर्मा

सोलहवीं शताब्दी का इंग्लैंड एक दूर देश की भाषा लैटिन की दासता के नीचे दबा था और इस भाषा के पैरोकार, फैशन, प्रतिष्ठा तथा कुछ निहित स्वार्थों से प्रेरित होकर इसके गढ़ मजबूत करने में लगे थे, जबकि आम जनता अपनी स्वदेशी भाषा अंग्रेजी को उसका उचित स्थान दिलाने के कार्य में जी-जान से जुटी थी। उस समय का प्रतिष्ठित बुद्धिजीवी वर्ग अपने देश की भाषा पर तरह-तरह के आरोप लगाता था और इसकी दरिद्रता तथा अक्षमता की बात उठाता हुआ, इसके प्रस्थापित हो जाने से ज्ञान और विज्ञान के क्षेत्र में इंग्लैंड के पिछड़ जाने की आशंका प्रकट करता था। भारत में हिन्दी की स्थिति भी बिल्कुल ऐसी ही है। पचास करोड़ से भी अधिक लोगों द्वारा बोली और समझी जाने वाली इस भाषा पर आए दिन नए-नए अभियोग लगाए जाते हैं और इसके मार्ग में नित्य नई बाधाएं खड़ी की जाती हैं। राष्ट्रभाषा को राष्ट्रीय मंच पर से हटाने के लिए उस पर तरह-तरह के लेबल लगाए जाते हैं, उसे बदनाम किया जाता है उसका मज़ाक उड़ाया जाता है और उसकी दरिद्रता के प्रति सहानुभूति प्रकट की जाती है। इस भाषा पर एक बड़ा आरोप यह लगाया जाता है कि यह कठिन है और आम आदमी की समझ से बाहर है।

हिन्दी भाषापर लगाया जाने वाला यह आरोप बिल्कुल बेबुनियाद और दुराग्रहमूलक है, क्योंकि यह बनावटी तौर पर खड़ी की गई भाषा न होकर एक जीवन्त सामाजिक परम्परा और परिवेश की उपज एक सहज सुन्दर और समृद्ध भाषा है। परन्तु यदि कोई यह चाहे कि यह एकदम सरल और सपाट बन जाए तथा एक ही दिशा में और एक ही गति से चलने लगे तो यह सम्भव नहीं है। दार्शनिक और दफतर के बाबू की भाषा के बीच अंतर तो रहेगा ही। साहित्य समीक्षक और सामाजिक कार्यकर्ता की भाषाएं भी भिन्नता लिए रहती हैं। समाज के विभिन्न वर्गों द्वारा प्रयोग में लाई जाने वाली भाषाएं नाना प्रकार की विशिष्टताएं और भिन्नताएं लिए रहती हैं। लेखक भी अपने स्वभाव संस्कार, विश्वास बौद्धिक स्तर, शिक्षा और माहौल के अनुसार भिन्न-भिन्न प्रकार की भाषाओं का प्रयोग करते हैं। यदि कोई यह चाहे कि दर्पण, चेहरे के उभारों, कोणों, गोलाइयों, गहराइयों और आभाओं को उनके असली रूप में प्रतिबिंबित न करके उसे सीधा और सपाट दिखा दे तो यह उसकी नासमझी ही होगी। भापा समाज की आवश्यकताएं पूरी करने के लिए होती है और समाज की ये आवश्यकताएं एक जैसी नहीं होतीं। भाषा विषय के अनुसार बदलती है। अलग-अलग विषयों के लिए अलग-अलग प्रकार के शब्द-कोश और मुहावरे की आवश्यकता होती है अतः भाषा कभी सरल बन जाती है, कभी कठिन

कभी सीधी हो जाती है और कभी वक्र, कभी सपाट हो जाती है और कभी दुरारूढ़ तथा कभी सुन्दर और सुललित बन जाती है और कभी कठोर और क्लिष्ट। यह सारी प्रक्रिया अपने आप चलती है। भाषा ऐसा कोई पदार्थ नहीं जिसे एक निश्चित अवधि में और एक निश्चित समाज द्वारा बनाया जा सकता है।

परन्तु कुछ लोग इसे ऐसा ही देखना चाहते हैं। राष्ट्रभाषा के कुछ कथित हितैषी इस भाषा से लगाव रखने वालों को परामर्श देते हैं कि अंग्रेजी आदि भाषाओं के जो शब्द हमारे यहां चल पड़े हैं उन्हें हटाना ठीक नहीं। इन्हें अलग कर देने से हिन्दी भारी भरकम बोझिल और कठिन बन जाएगी। बड़ी नेक सलाह है। हिन्दी में अंग्रेजी ही नहीं, फारसी, अरबी, फ्रांसीसी, पुर्तगाली आदि भाषाओं के भी हजारों शब्द प्रवेश किए हुए हैं और ये इसमें ऐसे घुल मिल गए हैं कि इन्हें आमतौर पर हिन्दी शब्द सम्पदा में ही परिगणित किया जाता है, परन्तु जहां तक अंग्रेजी शब्दों को बिना सोचे समझे अपना लेने का प्रश्न है, हमें आज की भारतीय परिस्थितयों और अपने मध्यम वर्ग की मनोवृत्ति पर भी एक दृष्टि डाल लेनी चाहिए। लिखित और परि-निष्ठित हिन्दी में विदेशी तथा अन्य भाषाओं के शब्दों का प्रयोग भाषा शास्त्र के एक विशेष नियम के अनुसार होता है और केवल वही शब्द और मुहावरे प्रयोग में लाए जाते हैं जो परम्परा तथा निरन्तर प्रयोग के कारण आत्मसात कर लिए गए हैं जिनकी संख्या का अनुपात हिन्दी के स्वरूप तथा उसके सन्तुलन पर कोई बुरा प्रभाव नहीं डालता है। जहां तक बोलचाल की हिन्दी का प्रश्न है इसमें अंग्रेजी के शब्दों वाक्यों, वाक्यांशों और मुहावरों का आज ऐसा बेतहासा और निर्मर्याद प्रयोग होने लगा है कि इसे लेखन में मान्यता देना इस (हिन्दी) भाषा पर कुठाराघात के तुल्य ही होगा। अंग्रेजी आज फैशन, प्रतिष्ठा और बड़प्पन का प्रतीक है। अतः इसके शब्दों और वाक्यों का अधिकाधिक प्रयोग कर लोग अपने आप को सभ्य सुसंस्कृत और सुशिक्षित दिखाना और कहलवाना चाहते हैं। तो क्या राह चलते बेखबर आदमी की खिचड़ी भाषा को हम हू ब हू वैसा ही अपना लें? यह भाषा ऊपरी तौर पर भले ही सयय की उपज और स्वाभा-विक लगे परन्तु हमारे समाज को नुकसान पहुंचा सकती है। इससे हमें सांस्कृतिक और साहित्यिक दृष्टि से घाटा हो सकता है। ऐसा करने से हमारी भाषा बनावटी और भद्दी तो बनेगी ही हमारी भावी संतानों को हमारी हीनता तथा हमारे पिछलग्गूपन का बोध भी कराती रहेगी। आज के कस्बाती और शहरी मध्यमवर्ग में प्रचलित बोलचाल की हिन्दी को यदि हम मान्यता दे दें तो इसमें क्रिया और सर्वनाम के अतिरिक्त हमारा अपना कुछ भी नहीं रह जाएगा तब हिन्दी शब्दकोश की तो जरूरत ही नहीं रहेगी, अग्रेजी शब्दकोशों से ही काम चल जाया करेगा। क्या निम्नलिखित वाक्यों की भाषा को हम आदर्श हिन्दी मान लेंगे।

1. यूनिवर्सिटी स्टूडेंटस में बड़ा अनरेस्ट चल रहा है। वे हर रूल को कलाऊट करने पर आमादा है।
2. लिंग्विस्टिक स्टट्स बनाना हमारी एक ब्लण्डर थी।
3. फार दा टाइम बीइंग तो हम कोई एक्शन ले नहीं सकते। हां अगर रूल्स में कोई मीनिंग फुल अमेण्डमेण्ड कर दी जाती है तो यह पॉसीबल है।
4. प्रॉबलम्स तो आएंगे ही, लेकिन इट डजण्ट मीन कि हम डी मॉर लाईज होकर बैठ जाएं और बजाए इन्हें फेस करने के इनके आगे सरेंडर कर दें। हमारी एस्केपिस्ट मेण्टेलिटी तो एक हैवक क्रिएट कर देगी।

5. वाइफ इनलाज के यहां गई है क्योंकि फादर-इन ला सख्त बीमार हैं। दिल्ली वाले ब्रदर आ जाएं तो उन्हें हॉस्पिटल में एडमिड करा दें।

हमारे दूरदर्शन की भेंट-वार्ता कार्यक्रमों में तथा विशेषज्ञों के साथ की जाने वाली बातचीत में यद्यपि यह प्रवृत्ति दिखाई देने लग गई हैं, परन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि हमने इसे मान्यता दे दी है। जो शब्द हमारे यहां पहले से ही मौजूद है और जो उक्त अंग्रेजी शब्दों की अपेक्षा कहीं अधिक अभिव्यक्ति सक्षम हैं उनका फिलहाल हम भले ही हीनतावश या किन्हीं अन्य कारणों से प्रयोग न करते हों परन्तु उन्हें सदा के लिए विदा कह देना अपनी सांस्कृतिक मौत को बुलावा देना होगा। स्वदेशी शब्दों का परित्याग करके असम्बद्ध विदेशी शब्दों का प्रयोग बढ़ाते चले जाना एक सामाजिक अपराध है, क्योंकि हमारी यह प्रवृत्ति शब्द की हत्या करके हमारी जीवन्त परम्परा को जीवाश्म (फॉसिल) के समान निर्जीव और निःसार बनाकर रख देगी। इस सम्बन्ध में हम कुछ अन्य उन्नत और प्रगतिशील देशों की कार्य पद्धति से प्रेरणा ले सकते हैं। जिस समय रूसी भाषा को सुधार कर उसे सोवियत संघ की राजभाषा बनाने का आंदोलन चल रहा था तब वहां के भाषा विशेषज्ञों ने स्पष्ट निर्देश दिया था कि फ्रांसीसी, अरबी आदि विदेशी भाषाओं के केवल वही शब्द रूसी में रखे जाएं जिनके लिए उपयुक्त स्वदेशी भाषाओं में न मिलते हों। अतः जिन वस्तुओं, विचारों और भावों के लिए संस्कृत तथा अन्य स्वदेशी भाषाओं में शब्द न मिलते हों, केवल उन्हीं के लिए विदेशी शब्द ग्रहण किए जाने चाहिए।

ऐकनॉलिजमेंट, क्लाइन्ट, क्लाईमेक्स, वार्म्थ, मेन्टीनेन्स, रांगफुल कनफाईननेण्ट, रेक्टीफाईएबल, रिकानाइसेन्स, रेकॉगनीशन आदि शब्दों की जगह क्रमशः पावती, कार्यार्थी, चरम सीमा, उष्णता, रख-रखाव सदोष परिरोध, संशोधनीय, टोह, मान्यता आदि शब्दों के प्रयोग में क्या बुराई है? इनके कठिन होने की बात बिलकुल असंगत है क्योंकि उक्त अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग जैसे पढ़ और सीखकर होता है वैसे ही उनके पर्याय स्वदेशी शब्दों का प्रयोग भी पढ़ और सीख कर ही होता है। बिना पढ़े और अभ्यास किए तो कोई भी भाषा नहीं आती। चण्डीगढ़ से छपने वाले अंग्रेजी ट्रिब्यून के 24 नवम्बर 1985 के अंक में छपे अपने पत्र में एक महाशय ने लिखा था कि हिन्दी विशेषज्ञों ने ऐसी शब्दावली घड़ी है जो सरकार की जी तोड़ कोशिशों के बावजूद भी चल नहीं पाई।' मतलब यह कि प्रयोग से पहले ही शब्दावली अप्रचलित और अलोकप्रिय हो गई। कुछ महानुभाव कहते हैं कि 'आम आदमी की भावनाओं का ध्यान न रखने वाले, परिनिष्ठत हिन्दी के विशेषज्ञ अप्रचलित और बनावटी हिन्दी का प्रयोग करते हैं।' इस सम्बन्ध में हम केवल इतना ही कहेंगे कि ऐसे विचार पूरी तरह दुराग्रहमूलक हैं। क्या कोई अंग्रेज बिना विधिवत अंग्रेजी पढ़े और अभ्यास किए अन्तरिक्ष विज्ञान भूगर्भशास्त्र, कानून, वाणिज्य, चिकित्साशास्त्र, धर्म अध्यात्म साहित्य-समीक्षा आदि की पुस्तकें पढ़ सकता है? हिन्दी बनावटी और विरूप उन्हें लगती है जो इसे पढ़ने और अपनाने का कभी प्रयत्न नहीं करते। इस भाषा से जान-बूझकर दूर रहने वाला व्यक्ति तो इसके शब्द सुनकर चौंकेगा ही। यदि हम सीज़न्डयुड, माऊन्टेनियर, म्यूटेशन, लेवेटरी, लैग्जेटिव, गजेटिड, डिप्रेशन, डैरोगेटरी रिमार्क आदि शब्दों के स्थान पर क्रमशः उपचारित लकड़ी, पर्वतारोही, इन्तकाल, शौचगृह, रेचक, राजपत्रित, दबाव, अपशब्द आदि शब्दों का प्रयोग करते हैं तो इससे न तो हमारी भाषा बनावटी बनती है और न हमें कोई कठिनाई ही होती है। 'मंच हार जीत के फैसले के बिना

समाप्त हो गया' इस लम्बे वाक्य के स्थान पर 'मैच अनिर्णीत रहा' बोलना ज्यादा अच्छा है, भले ही कुछ लोग इसे कठिन कहें। लगातार के प्रयोग से ही कठिन शब्द सरल बनते हैं। आखिर अंग्रेज़ी का 'ड्रॉन' शब्द भी तो लोग सुनकर ही सीखते हैं।

लोग शिकायत करते हैं कि हिन्दी कठिन है, परन्तु अंग्रेज़ी भाषा के बहुत से शब्दों और मुहावरों को न समझते हुए भी अशिक्षित समझे जाने के भय से चुप्पी साधे रहते हैं। अप्रचलित और क्लिष्ट शब्दों का प्रयोग तो अंग्रेज़ी में भी होता है। इसमें तो लैटिन और फ्रांसीसी के उन मुहावरों और वाक्यांशों का प्रयोग भी होता है जिन्हें आम शिक्षित की बात तो दूर विद्वान लोग भी कोशों की सहायता से ही समझते हैं। अलमामीटर (अपनी शिक्षण संस्था) बॉन बॉयज (सुख पूर्वक यात्रा) ऐन ब्लॉक (सामूहिक रूप में) इन टो टो (पूर्ण रूप से) मैगनम बॉनम (एक बड़ी अच्छाई) ऐन रूट (रास्ते में) ऐक्स पोस्ट फैकटो (बाद में) किवड प्रोक्वो (जो सिद्ध करना था) ऐक्स ग्रेशिया (रियायत के तौर पर) ऐक्स्ट्राम्यूरास (दीवारों से बाहर का) डनीवो (नया) बॉन मॉट (परिहासपूर्ण कहावत) ऐड वेलारम (मूल्य के अनुसार) ऐक्स ऑफिशियो (पदेन) ऐक्सैलसियर (उत्तम) इयूरिका (मैंने पा लिया) आदि शब्द ऐसे ही हैं। नए अप्रचलित तथा अन्य भाषाओं के शब्दों के प्रयोग का अधिकार केवल अंग्रेज़ी वालों को ही नहीं है। लॉटरी के लिए फ्रांसीसी मूल वाला 'रैफल' शब्द और गुप्त सभा के लिए पादरियों की चुनाव सभा वाल 'कॉन्क्लेव' शब्द प्रयोग में लाया जाता है। यदि अंग्रेज़ी में इलोक्वेन्स, इम्पलिसिट, शेरिफ, केश, एलमॉनी, फ़्लाऊण्डरिंग, बॉनान्ज़ा फ़ेलिसिटेट, बिनाईन आदि शब्दों का प्रयोग किया जा सकता है तो हिन्दी में इनके स्थान पर वाक्पटुता, अन्तर्निहित, नगर पिता, शिशुगृह, विदूत्परिषद लड़खड़ाना, समृद्धि, बधाई देना, भद्र आदि शब्दों का प्रयोग क्लिष्ट क्यों माना जाता है। आधुनिक अंग्रेज़ी में शेक्सपीयर के समय की भाषा के नित्य-नए अप्रचलित और कठिन शब्दों का प्रयोग करने वाले लोग ही कहते हैं कि हिन्दी को संस्कृतनिष्ठ न बनाओ। ये लोग फ्रैंच और लेटिननिष्ठ अंग्रेज़ी पर तो कभी आपत्ति नहीं करते इन्होंने हिन्दुस्तान टाईम्स, इण्डियन ऐक्सप्रैस, टाईम्स ऑफ इण्डिया, इम्प्रिण्ट, क्वेस्ट, पैट्रियॉट, इन्डिया टुडे आदि पत्रिकाओं को तो कभी ऐसा आरोप पत्र नहीं भेजा। कुछ लोग हिन्दी में प्रयुक्त होने वाले, फारसी अरबी स्रोतों से आए शब्दों पर भी आपत्ति करते हैं और कहते हैं कि ये शब्द हिन्दी के नहीं। हम पूछते हैं कि यदि हुकम, इज्ज़त, मिलकीयत, तामील, तआज्जुब, मुद्दा, अजीबो-गरीब, दख़ल-अन्दाज़ी, इन्तकाल, बन्दोबस्त, हाज़िरी, गुज़ारिश, दरख्वास्त जैसे आम फ़हम शब्दों को आप हिन्दी का नहीं मानते तो ऐम्बार्गो (स्पेनी) कुदीस (जापानी) ऐलीमेण्ट (लैटिन) ईलिप्स (जर्मन) आदि शब्दों को अंग्रेज़ी का क्यों मानते हैं ?

फिर कठिन भाषा में आखिर बुराई भी क्या है। गालिब को कौन बुरा कहेगा। काफ़्का अत्यन्त कठिन है परन्तु दुनिया फिर भी उसे बड़ा मानती है। श्री अरविन्द बहुत ही कठिन लिखने वाले रचनाकार हैं, परन्तु 'सावित्री' महाकाव्य की गणना फिर भी बीसवीं शताब्दी के श्रेष्ठ काव्यों में होती है। अप्रचलित और कठिन शब्दों, मुहावरों, प्रतीकों बिम्वों और अलंकारों का प्रयोग तो किसी भी भाषा में निषिद्ध नहीं होता। भाषा में जटिल, सूक्ष्म और दुरूह शब्दों और शैलियों का भी एक अपना महत्व होता है। हिन्दी की क्लिष्टता की बात करने वाले या तो इस भाषा के प्रतिविद्वेष रखते हैं या फिर उन्हें भाषाओं की प्रकृति, क्षमता और शक्ति का पूर्ण ज्ञान नहीं होता। क्लिष्ट शब्दों में भी एक खूबसूरती होती है। क्लिष्ट भाषा पढ़ने लिखने में

भी कुछ लोग रुचि रखते हैं। वैसे भी भाषा के स्तर के बारे में प्रत्येक व्यक्ति की एक निजी मान्यता होती है और उसकी कद्र की जानी चाहिए। सरल भाषा के समान ही भारी भरकम और गरिमा मण्डित भाषा का भी अपना महत्व होता है। इससे भाषा में रंगत आती है और सीखने वालों को शब्द भण्डार मिलता है। फिर कोई भी व्यक्ति संस्था किसी सुबन्धु, बाण, या ग़ालिब को सरल भाषा लिखने के लिए मजबूर नहीं कर सकते। भाषा, वस्तुतः बोलने या लिखने वाले के व्यक्तित्व का अभिन्न अंग होती है अतः व्यक्ति को खण्डित किए बिना इसे बदला नहीं जा सकता। भाषा तो वह वस्त्र है जिसे मनुष्य के भाव या विचार अपनी आवश्यकता-नुसार स्वतः ही ग्रहण कर लेते हैं। इसमें सरल और कठिन की बात हमारी ना समझी का द्योतन करती है। हां भाषा वास्तव में दुरूह और क्लिष्ट भी होती है और यह ऐसी उन्हीं रचनाओं में होती है जिनमें विचारों का तारतम्य नहीं होता और जहां विचारों और शब्दों में कोई संगति नहीं बैठती। वैसे जटिल और दार्शनिक व्यक्तित्व वाले रचनाकारों की भाषा भी दुरूह होती है।

जिन स्वदेशी शब्दों को हमारे फ़ैशन परस्त बुद्धिजीवी कठिन बतला कर भला-बुरा कहते हैं, वे भारतीय लोक परम्परा और परिवेश की उपज हैं। इन्हें भारतीय संस्कृति से अलग करके नहीं देखा जा सकता। शब्द कोई अक्षर-समुच्चय नहीं होता। इसमें अनन्त शक्ति पाई जाती है। यह समाज की जीवनदृष्टि तथा उसके बौद्धिक और आत्मिक स्तर का बोधक होता है। यह समाज के हास-परिहास, सुख-दुःख और आशा-आकांक्षा को अपने में समेटे रहता है; अतः इसे दूर फैंककर इसके स्थान पर किसी विदेशी शब्द को ला खड़ा करना किसी सामाजिक अपराध से कम नहीं है। शब्द में जीवन का अनन्त और अथाह स्पन्दन तो होता ही है, इसमें समूची सृष्टि तथा उसकी बहुरंगी मानसिकता को अभिव्यक्ति देने की क्षमता भी बहुत होती है। पुरातन ऋषियों ने शब्द को ब्रह्म का स्वरूप कहा था तथा मध्ययुगीन सन्त समाज ने इसे सर्वोच्च बोध का मूर्त रूप माना है। श्री अरविन्द कहते हैं कि 'आधुनिक मन यह समझता है कि शब्द बस किसी सत्य या वास्तविकता का चित्रण करता है और वह सामान्यतः बौद्धिक, व्यावहारिक और उपयोगी होता है, लेकिन यदि हम मनुष्य की सांस्कृतिक गतिविधि का अध्ययन करें तो हम पाएंगे कि शब्द शक्ति ने कभी-कभी मनुष्य जाति में बड़ी-बड़ी क्रान्तियां की हैं।' हमारे विचार और विश्वास तथा भाव और संस्कार धीरे-धीरे शब्दों का विकास करते रहते हैं, अतः शब्द हमारी त्वचा के समान होते हैं। इन्हें हम अपने से दूर नहीं हटा सकते।

जब तक हम अंग्रेज़ी के प्रति अपना अनुचित मोह नहीं छोड़ते और स्वदेशी भाषा को अपनी शिक्षा तथा काम-काज का माध्यम नहीं बनाते तब तक हमें हिन्दी कठिन और क्लिष्ट ही लगती रहेगी। हम एक स्वतन्त्र राष्ट्र हैं अतः हमें अपनी हीनता का परित्याग करके कुछ ऊंचा उठना चाहिए। भारत को आज एक शक्तिशाली और सहज माध्यम की जरूरत है और वह स्वदेशी भाषा को छोड़कर और कोई हो नहीं सकता। इसकी प्राप्ति के लिए प्रयत्न भी हमें ही करना है। भाषा ऊपर से नहीं गिरेगी। हम स्वदेशी भाषा के माध्यम से अपने बच्चों को पढ़ाएंगे और स्वयं भी इसके माध्यम से काम करेंगे तभी इसका विकास होगा। अंग्रेज़ी कभी भी भारत के जन-जन की भाषा नहीं बन पाएगी। अन्ततः हमें अपनी भाषा ही अपनानी होगी। परम पावन पोप जॉन पॉल ने 4 फरवरी 1986 को कलकत्ता के धर्म सम्मेलन में तथा इससे पूर्व उत्तर-पूर्वी भारत के राज्यों की यात्रा के दौरान जो हमें स्वदेशी संस्कृति और राष्ट्रीय परम्परा के

साथ-साथ स्वदेशी भाषा को अपनाने का परामर्श दिया है वह हमारे लिए बड़ा प्रासंगिक है। पोप जॉन पॉल के अपनी भाषा पोलिश बोलने से यदि उनकी ईसाईयत कम नहीं होती तो भारतीय ईसाईयों के अपनी राष्ट्रीय भाषा अपना लेने से उनकी ईसाईयत को क्या ही आंच आएगी। हमारी अन्य सामाजिक धार्मिक संस्थाएं भी, जो अंग्रेज़ी को बौद्धिक प्रगति और ज्ञान-विज्ञान का प्रतीक मानकर सम्पूर्ण शिक्षा का माध्यम अंग्रेज़ी बना डालने पर आमादा हैं, यदि पोप जॉन पाल से कुछ सबक सीख लें तो क्या बुरा है। यदि हम एक राष्ट्र के रूप में अपनी पहचान बनाना चाहते हैं तो अपनी भाषा को अपनाना बहुत ज़रूरी है।

[179 श्यामनगर धर्मशाला (हि०प्र०)]

समीक्षा
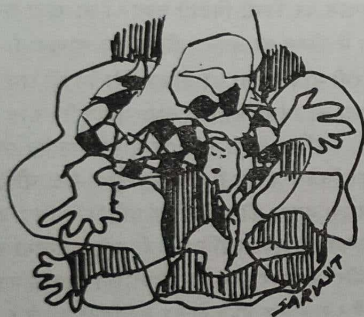
मुजस्सिम व्यंग्य और अनुदार कविता

□ श्रीनिवास श्रीकांत

राकेश (श्री) वत्स व्यंग्यप्रिय कवि हैं। प्रस्तुत संकलन में कवि की बत्तीस कविताएं संकलित हैं जो कटूक्तियों से मुखर हैं। इन रचनाओं में 'सूखी नदी का दर्द', 'सड़क', 'इन्तज़ार' 'कविता की तलाश', 'कविता', लेटे हुए आदमी पर पड़ी चादर', 'रस्सी पर आदमी', 'मुन्नु', 'वित्ते भर की मुनिया', 'जनवाणी' आदि उल्लेखनीय हैं। कविता की असली शक्ति उसकी अभावात्मकता है जो सहज मुहावरेबन्दी से और मार्मिक व अर्थमय बन गई है। कहीं-कहीं गृह-विरह का भाव पाठक को अपने पूरे बोध के साथ अन्दर तक झंझोड़ जाता है—जैसे सूखी नदी के दर्द में। नदी यहां एक नए ही अर्थ में उभर कर सामने आई है जिसके प्रसंग में अतीत को खण्ड-खण्ड देखा जा सकता है। यह उस व्यक्ति के टूटने का दर्द है जो वक्त के साथ अपनी सांस्कृतिक पहचान खो चुका है। कविता में इसे निहित अवसाद के बावजूद हम एक सुखद अनुभव कहेंगे; एक ऐसा अनुभव जिसे हम कवि की कृतज्ञता का नाम देंगे—यह कृतज्ञता अपने अतीतगत मूल्यों के प्रति है जिसने जीवन को मानवोचित और परहितवाद के ताने-बाने में बांध रखा है।

'इन्तज़ार' में विलक्षण प्रतिभा के मोहभंग की बात सार्थक हुई है। इस प्रतिभा को 'नये सूरज' के उदय होने' की उम्मीद थी। वह उस अदभुतता से एक अर्से तक बंधी रही लेकिन अंधेरे के बढ़ते हुए मोतियाबिन्द ने उसे एकाएक यह एहसास दिया कि वह सुबह कभी नहीं होगी। हर आदमी अपने बाल्यकाल में इस प्रकार के सपने देखता रहता है; लेकिन संसार के कटु यथार्थ से टूटने पर ऐसा मोहभंग स्वाभाविक है। यह एक औसत अनुभव है। फिर भी कवि के हाथों में पड़कर जादू का-सा असर दे जाता है। इसके साथ ही प्रश्न उभरता है, जो क्षितिजांत गूंजता चला जाता है—एक प्रेतवाधा की तरह। और वह प्रश्न है मनुष्य के कल्याण का, उसकी सुख-समृद्धि का।

'कविता की तलाश' में भी मोहभंग है, लेकिन सामाजिक प्रक्रिया से गुज़रते हुए यह उस व्यक्ति की व्यथा-कथा है जो सही कविता की तलाश में एकलव्य की तरह निरन्तर ठगा जा रहा है। कविता की खोज ने उसे दास बना दिया है। उसकी आत्मकथा 'शैतान' के उपालम्भ से शुरू होकर हम उसे 'अजगर की 'प्रतीति' में खत्म होते देखते हैं। कविता किस तरह इस 'गुरू' कह-लाए जाने वाले आदमी के हाथों से निकल उनके हाथ चली जाती है—संक्षेप में राकेश ने समझौता परस्त बिचौलिए कवि और उसको खरीदने वाली व्यवस्था का बड़े ही साफगो किन्तु काव्यात्मक ढंग से पर्दाफाश किया है। इसी में उस सच्चे काव्य खोजी की त्रासदी भी है, जो दूसरों द्वारा शोषित होकर, अपनी बनती हुई पहचान को खोकर, एक सामान्य दुखी आदमी बन

कर रह गया है।

'लेटे हुए आदमी पर पड़ी चादर' इस संकलन की सबसे सशक्त रचना है। पूरी कविता एक मुजस्सिम व्यंग्य है, उस समाज पर जो शोषित व्यक्ति की कभी न समाप्त होने वाली व्यथा से विरक्त है। कवि के बिल्लौर में एक गरीब परिवार और उसके आसपास के माहौल की संजीदगी कविता को एक बहुमूर्त्तदर्शी के रूप में प्रस्तुत करती है। जिस स्थिति में पहुंचकर शोषण के विरुद्ध की गई नारेबाजी अकारथ हो जाती है, वहीं इस कविता ने उस संदेश को बड़े ही अपरोक्ष और बारीक ढंग से संप्रेषित किया है। 'चादर बार-बार हिल रही है—इससे यह भ्रम होता है कि उसके नीचे लेटा आदमी जीवित है, लेकिन वह मर चुका है। यदि जीवित होता तो इस चादर को इस तरह हिलने की इजाजत न देता जो झूठे ही उसे जीवित साबित करने की चेष्टा कर रही है। यह विरोधाभास न केवल कविता में अर्थ पैदा करता है बल्कि अस्तित्व के विद्रूप को तराश कर हमारे सामने रख देता है। कवि ने सड़क पर की एक आमफहम दिखने वाली घटना को एक जानदार व्यंग्योक्ति में बदल दिया है जो कविता के माध्यम से सही वस्तुस्थिति का सूक्ष्मदर्शन कराती है। यानी घटना कविता में समाकर स्वयमेव सशक्त बन गई है।

शहरिए सरकारी आदमी को लेकर सप्तकों से अब तक अनेक कविताएं लिखी गई हैं। 'रस्सी पर आदमी' नामक कविता इसकी तर्जुमानी करती है। बुर्जुआ आदमी की स्थिति, उसकी सोच और उसकी विडम्बना को यह कविता पूरी तरह चित्रित करती है। कारकुन के लिए हर दिन एक अप्रिय घटना की तरह खुलता है और वैसे ही बन्द हो जाता है। यह सारा सिलसिला एक दु:स्वप्न की तरह है जिसे वह नौ से पांच तक की झूलती रस्सी पर सन्तुलित करता है। लेकिन यह नीत्शे के 'रस्सी पर नाच करने वाले आदमी' की कल्पना से बिल्कुल भिन्न एक विरोधी मिथक है। वहां इतिहास को बनाने वाले व्यक्ति की अवधारणा हुई है। जबकि यहां फैज़ अहमद फैज की 'फरीवां मखलूक' का कान्सेप्ट है जो (जाने क्यूं) 'फकत मरने की हसरत में जिया करती है।' यहां रस्सी का टूटना निश्चित है। आदमी की उससे मुक्ति सम्भव नहीं।

शहरी कविताओं में गांव का स्वर ज्यादा पैना है। इनमें गांवों की खोयी हुई अस्मिता और दमघोटू शहरीयत का किस्सा कहा गया है। गांव का मुन्नू शहर में आकर बड़ी-बड़ी इमारतों, फैलती सड़कों और धुंआ-फैक्टरियों के बीच किस तरह महसूस करता है उसका सटीक चित्रण इसी शीर्षक की कविता में देखा जा सकता है। समाजवाद का मूल उद्देश्य गांव और शहर का संतुलित विकास है जिसे महात्मा गांधी और माओत्से-दुंग जैसे इतिहास पुरुषों ने अपने राज्य सिद्धांत में पहले ही स्वीकार किया है। लेकिन व्यावसायिक वृत्ति पूरे समाज का शहरीकरण करने पर तुली हुई है। इस होड़ में जो पीछे छूट गए हैं वे हैं देहात। इस संकलन के कवि को इस बात पर पूरा एहसास है। 'मुन्नु' वाली कविता में कवि ने एक देहाती चरित्र के माध्यम से शहरी वस्तु-स्थिति की खिल्ली उड़ाई है। उसके लिए बचाव का कोई भी रास्ता नहीं छोड़ा है।

'जनवाणी में कवि सम्भाषण की मुद्रा में मंच पर सीधे प्रस्तुत हुआ है। विज्ञापन और प्रदर्शन वृत्ति के व्यंग्यचित्रों के ज़रिए उसने जो ताना-बाना बुना है, उससे दूरदर्शनधर्मी व्यवस्था की उपहासात्मक स्थिति का बोध होता है। यहां पर शहरी मनोवृत्ति के दर्शन होते हैं जो गांव के समाज के लिए दूरदर्शन स्क्रीन पर एक बेमानी विश्व का सृजन करने में संलग्न है।

बेहतर होता यदि संग्रह में कुछेक भरती की कविताएं शामिल न की जातीं। इससे संकलन के अनूठेपन को ठेस पहुंची है। जैसे-जैसे अनुभव परिपक्व होते रहेंगे। कविता और

निखरेगी। कवि के पास अपनी एक दृष्टि है, यही कारण है कि 'जिन्दगी तुझे मैं नाम दूंगा' की कविताएं इधर लिखी जा रही कविता के बरक्स अपनी एक पृथक् पहचान कायम करने में सफल हुई हैं।

'किले में कैद होकर **यादवेन्द्र शर्मा** का पहला संग्रह है। संकलन की अधिकांश कविताओं में सामाजिक संकट परिलक्षित है। कवि अपने आसपास के पाखण्ड और मिथ्याचार से चिन्तित है। कृत्रिमता का चेहरा उधेड़ना उसके लिए एक वृत्तिमूलक कर्म बन गया है। 'राष्ट्र-नेता की मौत' ऐसी ही एक कविता है जो गैरियत का नकाब उतार कर रख देती है। यद्यपि बिस्मिल्ला खां आदि का ज़िक्र निहायत अप्रतिष्ठाजनक लगता है। कविता को ऐसी अनगढ़ बयानबाजी से बचना चाहिए। नेता का रोष बड़े कलाकारों पर उतारने से व्यंग्य एकांगी और संकीर्ण हो गया है।

कविता का अनुदार होना एक दुर्भाग्यपूर्ण बात है। लेकिन साहित्य में ऐसे अपवाद भी देखने को मिलते हैं जहां कविता छिद्रान्वेषण का उपकरण बनी है। यदि कविता की संप्राप्ति उसके अनुदार होने में है तो उक्त कसौटी पर इस संकलन की कविता अपने पैनेपन के साथ खरी भी उतरती है। प्रतिकूल प्रभाव डालना ऐसी कविता का मूलभूत उद्देश्य रहता है।

इन दिनों परिवेश का सम्मोहन एक पूर्वाग्रह बन गया है। एक विकासशील कवि को ऐसे फतवों से बचना चाहिए। हिमाचल प्रदेश में लिखा जाने वाला अधिकांश परिवेशगत साहित्य परिवेश की सही पहचान बनाने की जगह उसे अधिकाधिक विकृत करता जा रहा था। यदि परिवेश का तकाजा कविता को संकीर्ण बनाएगा तो न उससे परिवेश की रचना में सही प्रतिष्ठा होगी और न कविता सहिष्णु और उदारचेता कहला सकेगी।

यह ठीक है कि आज के सभी सामाजिक वचनों को पूरा करने के लिए कविता को असंदिग्ध और अकाट्य होना चाहिए लेकिन यह कार्य केवल गालियां ईजाद करके पूरा नहीं हो सकता है। उसे संवेदनशील और देर तक असरदार बनाना भी जरूरी है।

'किले में कैद होकर' की कविताएं कुछ अपने से अधिक बोलती हैं। उनमें निषेधात्मकता है। भविष्य में कवि अपने आपको इन असंगतियों से मुक्त कर सकेगा। संकलन की कविताओं में 'टोपियों के बाद', 'बस'; 'पहाड़, काफल, औरतें,' 'राय साहब', 'मच्छलियां नाहक बदनाम हैं', 'पहाड़ का बेटा', 'पहाड़ी पर हवा', 'जूते', 'पेड़' 'बरई' कुछ सटीक और सुथरी कविताएं हैं। अधिकांश कविताओं को गद्यात्मकता कमपैनी और नीरस बना देती हैं। काव्य सम्मत पदयोजना पर विशेष बल नहीं दिया गया है।

पुस्तकें :

1. **जिन्दगी, मैं तुझे नाम दूंगा : राकेश (श्री) वत्स,** प्रकाशक : आत्माराम एण्ड सन्स, कश्मीरीगेट दिल्ली-110006 मूल्य : 22 रुपये 50 पैसे।

2. **क़िले में कैद होकर : यादवेन्द्र शर्मा,** प्रकाशक : शब्दपीठ, आनन्द भवन के सामने, इलाहाबाद-211002, मूल्य : 35 रुपये।

मिट्टी से जुड़े सामाजिक सरोकार

☐ **हिमेश**

सुदर्शन वशिष्ठ की आठ कहानियों का संग्रह 'पिंजरा' ताज़ी हवा ने सुखद झोंके-सा मन को आनन्द देता है और अन्दर ही अन्दर कहीं आठ ज़ख्म भी दे जाता है। विघठित होते, छीजते, मिटते लोगों की ये कहानियां पाठक को कुछ ऐसे छूती हैं कि मन अवसाद से भर जाता है। इतना जरूर लगा कि सुदर्शन वशिष्ठ की कहानियों के पात्र जूझते कभी नहीं। ये खटका सभी कहानियों को पढ़कर बना रहा, जो इन्सान के उत्साह, जीजिविषा और 'चरैवैति-चरैवैति' के 'इनबिल्ट मैकेनिज्स' को नकारता-सा लगता है। तमाम छीजन, टूटन और विघटन के बावजूद इन्सान संघर्ष नहीं छोड़ता, आस से अपना दामन नहीं झटकता।

वशिष्ठ का कथाकार अपनी पैनी दृष्टि से पात्रों की मनोभावनाओं के तल तक पहुंचता है। उसकी भाषा में कवि जैसी प्रांजलता है। उसने परिवेश को आतमसात किया है।

वशिष्ठ की कहानियों की मुन्शी प्रेमचन्द की कहानियों से तुलना करना बेतुका होगा मगर कहीं-कहीं लगता है कि ये मुन्शी प्रेमचन्द की कहानियों से आगे निकल जाती हैं।

सुदर्शन ने इस कहानी संग्रह में अपनी कहानियों के बारे में जो समीक्षकों और विद्वान पाठकों की सम्मतियां दी हैं (अच्छा होता यदि वे ऐसा न करते) उनमें आंचलिक शब्दों, आंचलिक परिवेश वगैरा का जो लेबल लगा है उससे मन कुछ खिन्न हुआ। हमारे विद्वान एक बहुत बड़ी भ्रान्ति में रह रहे लगते हैं। उनके पास ऐसी सैन्सिटाइज्ड और स्टैरिलाइज्ड भाषा के वजूद का भ्रम है जो मिट्टी से न जुड़ी हो। इस एप्रोच से हिन्दी के सही मानों में राष्ट्र भाषा बनने की प्रक्रिया को आघात पहुंचता है। दरअस्ल हिन्दी तभी राष्ट्र भाषा बन पाएगीं जब उसका प्रान्तीय रूप मिट्टी से जुड़ा हो। वशिष्ठ की भाषा इसी के अनुरूप है। मैं सिरे से ही आंचलिक और आंचलिकता जैसी तोहमतों को नकारता हूं।

'ऋण का धन्धा' कहानी में वशिष्ठ मसीहा से लगते हैं। ग्रामीण लोगों के ऋण अब मुआफ हुए हैं। बोतल को झोले में डालते हुए प्रधान हंसता है—'तेरा क्या लैणा। ज़मीन नीं, जादाद नीं······मंगत तेरा क्या लैणा। तेरा तो सब माफ होगा एक दिन देख लैणा।' विकास की प्रक्रिया की जो विकृति हमारे ग्रामीण जीवन में आज देखने को मिलती है वशिष्ठ ने उसकी सही तस्वीर खेंची है। 'नर्गिस के फूल' एक अलग तरह की कहानी है। 'की लोड़ी मामिए' की आवाज़ लगाने वाले परिवेश से बाहर के सब्जी-फरोश जिन नज़रों से स्थानीय बालाओं को देखते हैं उसके सम्बन्ध में इशारों-इशारों में वशिष्ठ जो संकेत कर जाते हैं वह बहुत कुछ लिखने से आगे है। इस कहानी में जिस हिम्मत और दृढ़ता से वशिष्ठ ने हिमाचल की लोक-संस्कृति की पक्ष-

धरता की है वह सराहनीय है। वैसे मुझे यह कहानी वशिष्ठ की अन्य कहानियों से कुछ कम सशक्त लगी। लेकिन जो कुछ कहने के लिए उन्होंने ये कहानी कही है उसमें पूरी तरह सफल हुए हैं।

'पिंजरा' कहानी वास्तव में 'तोता और मैना' के अन्तर्द्वन्द्व, इनके टूटन और छीजन की एक सफल कविता-सी लगती है। बहुत मार्मिक है। इसी कहानी में तोता और मैना का हलका-सा विद्रोह भी दर्शाया गया है, जो फलीभूत होता है। वे दोनों पिंजरे में कैद हैं और रहेंगे भी, मगर हल्के से विद्रोह के बाद उन्हें तापने के लिए अंगीठी मिलती है, ये क्या कम है?

ग्रामीण जीवन में अविरल शोषण और उसके नित-नए रूपों के प्रति वशिष्ठ आँख नहीं मूंदते। 'औरंगजेब की जीत' कहानी में लाला जी की जायदाद बढ़ने और उसके नौजवान बेटे द्वारा बोतल-संस्कृति के शोषण को तो उजागर किया ही, साथ ही राजनीति में कैसे लोगों का शिकंजा मज़बूत होता जा रहा है इसको भी स्पष्ट किया है। 'भौंहों का दर्द' कहानी में शिक्षा जगत् में घटियापन और शोषण को मुद्दा बनाया गया है और रद्दी बेचने वाले द्वारा पाठ्य-पुस्तकें और गुटके तैयार करके अमीर होने की प्रक्रिया में एक सटीक व्यंग्य निहित है।

'बुरे दिन' इस संग्रह की एक और अच्छी कहानी है। साम्प्रदायिक दंगों को ले कर सेना को सीमा की सुरक्षा की बजाय छोटे-मोटे शहरों में शान्ति स्थापित करने की विडम्बना वशिष्ठ को कचोटती है—'महाभारत भी आजकल ही लड़ा गया था, कार्तिकी पूर्णिमा के बाद। यह महाभारत भी नहीं है। उससे भी घिन्नौना खेल है जो आमने-सामने न हो कर लुक-छिप कर अपनी ही गलियों में आपस में लड़ा जा रहा है।' इस 'घिन्नौने खेल' को लेखक स्पष्ट नहीं करता और पाठकों से पूछता है—'कौन है इस सब का जिम्मेदार, ज़रा आप भी गौर कीजिए।'

जुझारूपन और संघर्षशीलता, जो मानव प्रकृति के अभिन्न अंग हैं, को उजागर न कर पाने को क्षमा किया जा सकता है, मगर समाज की विकृतियों को सिरे से ही न समझना और न मानना लेखक के लिए कभी क्षम्य नहीं हो सकता। वशिष्ठ ने इस कहानी में कम से कम एक सवाल तो किया है जो उत्साहजनक है।

अन्त में यह बात स्पष्टतौर पर कही जा सकती है कि वशिष्ठ मिट्टी से जुड़े सामाजिक सरोकारों के कहानीकार हैं। मानवीय सम्बन्धों के बिखराव की गुत्थियों से भी वाकिफ हैं। समाज और मानव के प्रति उनकी कमिटमेण्ट पूर्ण है जो अपने आप में बहुत बड़ी बात है। टैस्ट-ट्यूबी रचनाओं से वशिष्ठ को कुछ लेना-देना नहीं।

'पिंजरा' (कहानी संग्रह); **सुदर्शन वशिष्ठ;** प्रवीण प्रकाशन, नई दिल्ली, मूल्य : तीस रुपये।

आयोजन

वत्सल निधि शिविर : शिमला

निकष बराबरी है, नहीं तो दोष है

हिन्दी के शीर्षस्थ साहित्यकार सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन अज्ञेय को जब वर्ष 1980 में भारतीय ज्ञान पीठ पुरस्कार से सम्मानित किया गया तो उन्होंने एक लाख रुपये की सम्मान राशि में इतनी ही राशि अपनी ओर से मिलाकर भारतीय साहित्य की सेवा को सर्मपित 'वत्सल निधि न्यास' की स्थापन की।

गत लगभग दस वर्षों से यह संस्था साहित्य और भाषा की सम्वर्द्धना, साहित्य विवेक और सौन्दर्य बोध के विकास सम्बन्धी आनुषंगिक कार्य करती आ रही है। वत्सल निधि द्वारा प्रतिवर्ष लेखक शिविरों, व्याख्यानमालाओं, विशिष्ठ संगोष्ठियों, सांस्कृस्तिक यात्राओं आदि के आयोजन किए जाते हैं। इसी उपक्रम में जो सामग्री एकत्र होती है उसे सम्पादित करके विशेष प्रकाशनों के रूप में प्रस्तुत किया जाता है। इस तरह की एक दर्जन से अधिक पुस्तकें अब तक प्रकाशित हुई हैं।

वत्सल निधि के लेखक शिविर देश के विभिन्न भागों में होते रहे हैं। न्यासधारी सचिव सुश्री इला डालमिया के अनुसार इसका उद्देश्य यह भी रहता है कि उस अंचल या प्रदेश के लेखक और अन्य कला-विधाओं में कार्यरत प्रतिभाएं भी इससे लाभान्वित हो सकें।

वत्सल निधि का दसवां लेखक शिविर शिमला में 2-5 सितम्बर '89 को सम्पन्न हुआ। हिमाचल कला, संस्कृति एवं भाषा अकादमी तथा प्रदेश के भाषा एवं संस्कृति विभाग के सहयोग से आयोजित इस शिविर में प्रदेश के पन्द्रह साहित्यकारों ने भाग लिया और सोलह साहित्यकार व अन्य संस्कृतकर्मी देश के विभिन्न भागों से पधारे थे।

यह लेखक शिविर हिमाचल लोक प्रशासन संस्थान फेयरलान्ज़ में आयोजित हुआ। फेयरलान्ज़ के निकट ही वुड्डीना कम्पलैक्स में, जहां बाहर से आने वाले साहित्यकारों को ठहरने का प्रबन्ध था, एक सितम्बर की शाम तक कुछ लोग पहुंच चुके थे। बाकी लोग दो सितम्बर को दोपहर पूर्व पहुंचे। लोक प्रशासन संस्थान के कान्फ्रैंस हाल में दो सितम्बर को सायं चार बजे लेखक शिविर का उद्घाटन सत्र सम्पन्न हुआ। इस अवसर पर हिमाचल प्रदेश सरकार के वित्तायुक्त एवं सचिव (भाषा-संस्कृति) श्री महाराज कृष्ण काव ने शिविर में भाग लेने वाले लेखकों का स्वागत करते हुए कहा कि वत्सल निधि ने अपने शिविर के लिए शिमला का चयन करके हमें उपकृत किया है। इस शिविर में भाग लेने के लिए पधारे विभिन्न कलाविधाओं के रचनाकारों के सान्निध्य और विचारों से प्रदेश के लेखक लाभान्वित होंगे और विभिन्न स्तरों पर विचारों का आदान-प्रदान हो सकेगा।

न्यासी सचिव सुश्री इला डालमिया ने वत्सल निधि के कार्यक्रमों और इस शिविर की योजना पर प्रकाश डाला।

चार दिनों के इस शिविर में बहस के लिए मुख्य विषय "साहित्य, संस्कृति और मानवाधिकार" निश्चित था। विषय प्रवर्तन करते हुए मुख्य वक्ता डॉ० लक्ष्मी मल्ल सिंघवी ने कहा कि इस विषय का उद्देश्य केवल कानूनी स्तर पर बहस करना नहीं है बल्कि साहित्य, संस्कृति और मानवाधिकार के बीच उन सूत्रों या सेतुओं की तलाश करना है जो साहित्य और संस्कृति के विभिन्न पहलुओं का मानवाधिकार से सम्बन्ध जोड़ते हैं। डॉ० सिंघवी ने लगभग एक घंटे के भाषण में अनेक उद्धरणों और तर्कों के माध्यम से अपने विषय का प्रवर्तन करते हुए चार दिन की इस लम्बी बहस के लिए अनेक सवाल निकाल कर सामने रख दिए और साथ ही अपनी मान्यताओं को भी स्पष्ट किया। डॉ० सिंघवी ने कहा कि पश्चिमी मान्यताओं में आधुनिक तथा प्राचीन ग्रीक रोमन परम्परा दोनों में ही व्यक्ति की अवधारणा प्रधान है। जब कि पूर्व में मनुष्य की जगह मनुष्यता की प्रधानता है। पश्चिमी मान्यता में मानवाधिकार का अर्थ है सत्ता पर प्रतिबन्ध लगाना। जबकि भारत में इसको धार्मिक तथा सांस्कृतिक परंपरा के रूप में स्वीकारा गया है। मानवाधिकार के प्रति चेतना का संस्कार साहित्य से ही आता है। डॉ० सिंघवी के भाषण के बाद दलित साहित्य आन्दोलन के प्रवर्तक मराठी लेखक श्री दया पवार ने कहा कि हमारे देश में लेखक भी जाति और वर्ग के होते हैं। यहां मानवाधिकार भी जातिगत और वर्गगत हैं। इस सत्र की अध्यक्षता कर रहे प्रसिद्ध दार्शनिक डॉ० दया कृष्ण के संक्षिप्त वक्तव्य के साथ उद्घाटन सत्र सम्पन्न हुआ।

जलपान के बाद हिमाचल प्रदेश के विभिन्न क्षेत्रों के लोकगीतों पर आधारित कार्यक्रम प्रस्तुत किया गया। शिमला की पहाड़ियों की नाटी की धुन पर श्री सिंघवी, डॉ० मुकुन्द लाठ, सुश्री फ्रान्सीन कृष्णा व इला डालमिया आदि भी हिमाचल के लेखकों व कलाकारों के साथ नृत्य में शामिल हुए।

तीन सितम्बर की प्रातः डा० लक्ष्मीमल्ल सिंघवी की अध्यक्षता में ही परिचर्चा शुरू हुई। बहस की शुरूआत करते हुए श्री निर्मल वर्मा ने कहा कि कोई भी व्यवस्था नॉन हायरार्की नहीं हो सकती। अर्थों का संयोजन करना हर संस्कृति का दायित्व होता है। श्री निर्मल वर्मा ने आगे कहा कि कहीं भी, कोई भी संस्कृति अपने में पूर्ण नहीं हो सकती। संस्कृति में व्याप्त अपूर्णता को पाने के लिए जिन व्यवस्थाओं की कल्पना की गई उनसे मूल्यों में अभिरूचि भी बढ़ती है। यहीं से चिन्तन की तैयारी और साहित्य की शुरूआत होती है। साहित्य यदि दूसरों के लिए उपलब्ध न रहे तो संस्कृति और साहित्य का संबंध कुत्सित हो जाता है। अधिकार उपलब्ध हो जाने पर उनका उपयोग कैसे हो, यह हमारी नहीं, पश्चिम की स्थिति ही ऐसी है कि वे अधिकार होने पर भी उनका उपयोग नहीं कर पाते। वे एक शून्य की स्थिति में जी रहे हैं। किन्तु पिछड़े हुए समाज में मानवाधिकार सृजनात्मकता की कसौटी बना है।

डॉ० दया कृष्ण का कहना था कि संस्कृति के संदर्भ में ही मनुष्य मनुष्य होता है। उन्होंने कहा कि परंपरा को बचाने की चेष्टा भी बराबर ठीक नहीं होती क्योंकि हमारी परंपरा में इतनी कमजोरियां हैं कि जिनका कोई हिसाब नहीं। श्री मानस मुकुल दास ने स्वन्त्रता, समानता और भाईचारे को मानवाधिकार का आधार बताया। उन्होंने आगे कहा कि हमारे यहां अधिकार मूल्यों के भीतर रहकर ही है जब कि पश्चिमी जगत् में व्यष्टि की समष्टि की ओर यात्रा है।

डॉ० सिंघवी ने कहा कि भारत में उत्तरदायित्व और दायित्व को निभाना ही अधिकार है और अपने अधिकार को भी सिद्ध करना पड़ता है। श्री दया पवार का कहना था कि शोषण केवल आर्थिक ही नहीं बल्कि सांस्कृतिक शोषण भी होता है। श्री मुकुन्द लाठ ने कहा कि सिर्फ संवेदना मानवाधिकार की ओर नहीं ले जाती, साहित्य मानवाधिकार के संदर्भ में गौण रह जाता है; क्योंकि साहित्य कला है। इस पर श्री नन्दकिशोर आचार्य ने सवाल किया कि क्या रस-सिद्धि की मानसिक अवस्था में सभी बाधाओं का निराकरण नहीं है? क्या संगीत आदि कलाएं स्वतन्त्रता को सिद्ध नहीं करती?

डॉ० दयाकृष्ण ने बहस को आगे बढ़ाते हुए एक बार फिर कहा कि हमारा सब प्राच्य अजीब तरह से बांधता है। जितना पुराना साहित्य है दासता को भी न्याय संगत मानता है। पुरानी सारी संस्कृति जिन मूल्यों पर आधारित है उन्हें हम स्वीकार नहीं करते। साहित्य और संगीत के प्रभाव को लेकर हुई बहस के संदर्भ में हिन्दी कवि गिरधर राठी ने शंका रखी कि ब्रेष्ट को बिथोबेन पसन्द नहीं था, उसमें उन्हें युद्धों की गर्जना सुनाई पड़ती थी। परंपरा और संस्कृति की बात में बहुत खण्डित दृष्टिकोण सामने आते हैं। श्री निर्मल वर्मा ने अपनी गहरी सोच से निकलते हुए कहा कि यहां अधिकार संभवतः राजसत्ता से है। जब कलाकार अपने को ऐसी स्थिति में पाए कि एक लोकतांत्रिक स्वतन्त्रता के भीतर वह अपनी कला का सृजन कर रहा है, जिसका राजसत्ता से कोई सम्बन्ध नहीं; वह कलाकार जब यह महसूस करता है कि वह अधिकार नहीं भोग रहा बल्कि एक दी हुई सुविधा को भोग कर रहा है, ऐसी स्थिति में सृजन-कर्त्ता का दायित्व, उसका कर्त्तव्य, क्या हो जाता है—हमें इस ओर भी सोचना चाहिए। दर्शन और कानून के युवा विद्वान डॉ० छत्रपति सिंह ने साहित्य, मानवाधिकार, परंपरा और मूल्य इन पर क्रम से विचार करने का प्रस्ताव रखा। इस पर डॉ० सिंघवी ने कहा कि परंपरा वाला सवाल महत्वपूर्ण है। बाकी, साहित्य में पांचसाला कार्यक्रम नहीं हो सकते; दृष्टि हो सकती है। साहित्य इश्तहारी या समाज से असंपृक्त होने पर दोनों तरह से अपनी सार्थकता खो बैठता है।

तीन सितम्बर को दोपहर बाद बौद्ध संस्थान सारनाथ के प्रमुख स. रिन्पोछे की अध्यक्षता में गोष्ठी शुरू हुई। बौद्ध दर्शन के सुप्रतिष्ठित विद्वान स. रिन्पोछे ने प्रारम्भ में अपने सारगर्भित वक्तव्य में कहा कि बौद्ध को पलायनवादी कहते हैं, लेकिन परिस्थितियां क्या रही हैं, इस ओर कोई ध्यान नहीं देता। बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में मानवाधिकारों का इस कदर हनन हुआ है कि राष्ट्रसंघ जैसा संगठन भी मानवाधिकार के हनन के खिलाफ आवाज़ नहीं उठाता। उन्होंने आगे कहा कि काव्य वेदना की ध्वनि से निकलता है। रचनाकर यदि सीधा विरोध न भी करें तो स्थितियों को चित्रांकित कर सकते हैं। इससे विश्व का हित होगा। स. रिन्वोछे का हर शब्द जैसे ध्यान के बीच से निकल रहा था—हमें सोचना चाहिए कि मानव संस्कृति के अधीन है या संस्कृति मानव के अधीन? मानव की बुद्धि, विवेक स्वतन्त्र है या नहीं? संस्कृतियों का मिलन तो ठीक है परन्तु टकराहट भी तो होती है!

स. रिन्वोछे के बाद संस्कृत वाङ्मय और भारतीय दर्शन के हिमाचली विद्वान आचार्य शालिग्राम ने परिचर्चा को आगे बढ़ाते हुए कहा कि अधिकार स्वयं मानव बनाता है। साहित्य और संस्कृति अधिकारों में निर्मलता लाते हैं। साहित्य संसार के लिए कुछ देता है। स्वातन्त्र्य लक्ष्य भी है, अधिकार भी। उन्होंने अधिकांश संस्कृत विद्वानों की तरह भारतीय परम्परा के पक्ष में भी तर्क दिए। बात को आगे बढ़ाते हुए हिन्दी कवि व कला समीक्षक श्री प्रयाग शुक्ल

ने कहा कि कोई भी रचनात्मक काम मानवीय न्याय के पक्ष में ही होता है। उन्होंने समाज में महिलाओं और दूसरे वर्गों के शोषण को भी रेखांकित किया। कहानीकार श्री सुन्दर लोहिया ने साहित्य के प्रयोजन को लेकर हुई बात को आगे बढ़ाते हुए कहा कि 'शिवेतर-क्षय' भी साहित्य का प्रयोजन रहा है। क्या शिव है क्या आशिव ? इसका निर्णय व्यक्ति का विवेक करेगा। विवेक अपनी स्वतंत्रता कर्म में पा सकता है महज़ चिन्तन में नहीं। जब तक रचनात्मकता लोक से नहीं जुड़ती इसकी सार्थकता सिद्ध नहीं होती।

उर्दू शायर शीन० काफ० निज़ाम ने कहा कि उर्दू मुसलमानों की ही भाषा नहीं। निर्मलजी की बात का संदर्भ देते हुए निज़ाम साहब ने फरमाया कि कला ही मनुष्य को जीने का हक दिला सकती है। कवि-कथाकार श्री महाराज कृष्ण काव ने कहा कि विश्व में धर्म, दर्शन, चिन्तन सब परस्पर मिलते और टकराते हैं। इस तरह हम देखते हैं कि मानवाधिकारों के हनन के पीछे दर्शन और धर्म छिपे हैं। एक समय था जब तिब्बत में बौद्ध धर्म को लेकर भारत गया था और अब समय है कि मार्क्सवाद को लेकर वहीं चीन हाज़िर है। अंग्रेज़ी व अमरीकी साहित्य की प्रोफेसर डॉ० फांसीन कृष्णा ने कहा कि मानवाधिकार की धारणा पाश्चात्य है। भारत दर्शन व चिंतन में महत्वपूर्ण योग देता है। हमें शीशे को तोड़कर प्रकृति को देखना होगा। उन्होंने कहा कि वनस्पति-जगत्, प्राणि-जगत् व पुस्तकालय जैसी वस्तुओं का भी अधिकार होना चाहिए।

इस शिवर को नगर की भीड़-भाड़ से दूर रखने के उद्देश्य से फेयरलान्ज़ का शांत-एकान्त देखा गया था, और वैसे भी मशोबरा और ढली के बीच का यह क्षेत्र ही नगर की विभीषिका से कुछ बचा रह गया है। लेकिन फेयरलान्ज के गोष्ठी कक्ष में भी जब एक तरह की एकसरता होने लगी तो चार सितम्बर की प्रातः पूरा शिविर एक छोटी-सी पिकनिक पर नाल-देहरा तक निकला। यह बहुत सुहावनी सुबह थी। छुटपुट बादलों के बावजूद बरसात के बाद की निखरी धरती और उस पर भादों की अलसाती धूप। आखिर कवि, कलाकार संगीतज्ञ, दार्शनिक, कानूनविद आदि अनेक विधाओं के लगभग तीस लोगों का समूह देवदार के घने जंगल में पहुंचा। डा० मुकुन्दलाठ ने कुछ शास्त्रीय राग गाए तो लोग मौन और देवदार संगति में मुखर होने लगे। इसके बाद सर्व श्री नन्दकिशोर आचार्य, प्रयाग शुक्ल, शीन० काफ० निज़ाम, गिरधर राठी, सत्येन्द्र शर्मा, सुश्री रेखा, सरोज परमार, अग्निशेखर, अवतार एनगिल, आदि कवियों ने अपनी हिन्दी कविताओं का पाठ किया और श्री दया पवार ने एक स्वरचित मराठी गीत गाया। श्रीनिर्मल वर्मा, स० रिन्पोछे, डा० दयाकृष्ण देवदारों की ढासना में ध्यान लगाए बैठे रहे। दोपहर के भोजन के बाद फिर उसी गोष्ठी कक्ष में लौटना हुआ।

दोपहर बाद की सभा निर्मल जी की अध्यक्षता में सम्पन्न हुई। डा० छत्रपति सिंह ने फिर उन्हीं चार शब्दों की चारपाई में बहस को बुनने का आग्रह किया और अधिकारों के साथ कर्त्तव्य के महत्व पर भी बल दिया। श्री गिरधर राठी ने कहा है कि अधिकारों की चर्चा करना अनुचित तो नहीं है। डा० बंशीराम शर्मा का प्रस्ताव था कि दूरदराज के इलाकों में शोषण से जुड़ने वाली अनेक प्रथाएं अब भी हैं। इन्हें समग्रता में खोज निकालना चाहिए और इनके खिलाफ आवाज उठानी चाहिए।

श्री प्रयाग शुक्ल ने रघुवीर सहाय की 'पानी की मांग' से सम्बन्धित कविता के माध्यम से स्पष्ट किया कि साहित्य मानवधिकार के क्षेत्र में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है।

इस बीच डा० दयाकृष्ण ने करुणा को दया के अर्थ में लेते हुए कहा कि इससे समानता

को हानि पहुंचती है। इस पर सुश्री रेखा का कहना था कि करुणा एक केन्द्रीय भाव है जो साहित्य, संस्कृति और मानवता को जोड़ने वाला सेतु है। संस्कृति से ही मानवाधिकार की चेतना फूटती है। श्री नन्दकिशोर आचार्य ने राज्य की परंपरा और दण्डविधान की ओर संकेत किया। श्री दया पावर ने कहा कि अधिकारों के बावजूद व्यवसाय परिवर्तन नहीं के बराबर हुआ है कुछ जगह लोक में चोर होना भी व्यवसाय है और अपनी पत्नी को कुछ अवधि के लिए राशि पर देने की भी रीति है। उन्होंने सन्दर्भ जोड़ते हुए कहा कि बाल्मीकि भी व्यवस्था के के कवि थे; उन्होंने अपने समय की बुराइयों और शोषण का चित्रण नहीं किया।

बात को आगे बढ़ाते हुए श्री निर्मल वर्मा ने कहा कि दलित वर्ग के लोग भी मंत्री या अधिकारी होने पर अपने वर्ग को भूल जाते हैं। इसलिए बात को वर्ग या वर्ण तक सीमित नहीं रखा जा सकता। समाज व्यवस्था में विभिन्न स्तरों तक बदलाव आता रहता है। श्री सत्येन्द्र शर्मा का का कहना था कि मानवाधिकार के प्रति सजगता, साहित्यकार की भूमिका है। अंकुश वालों की निरंकुशता सर्वाधिक चिन्ता का विषय है।

श्री नवज्योति सिंह का विचार था कि यहां तो जीने का अधिकार भी छीन लिया जाता है। श्री प्रयाग शुक्ल ने कहा कि चेतना जागृत करना ही साहित्य, संस्कृति के क्षेत्र में आता है।

पांच सितम्बर की सुबह श्री मुकुन्द लाठ की अध्यक्षता में गोष्ठी शुरू हुई। डा० छत्रपति सिंह ने अनेक कानूनों के माध्यम से मानवाधिकार के हनन की बात स्पष्ट की। उनका कहना था कि एक कानून बनाकर हम जहां कुछ लोगों के अधिकारों की रक्षा करते हैं वहीं कुछ अन्य लोगों के अधिकारों को लेते रहे हैं। श्री सुन्दर लोहिया को लग रहा था कि चर्चा में कानून पक्ष हावी हो रहा है। श्री निर्मल वर्मा ने कहा कि संस्कृतियों में दायित्वबोध और मर्यादाएं होती हैं हमने शिष्टाचार की कुछ मर्यादाएं विकसित की हैं जो सभ्यता का अभिन्न और परोक्ष अंग बनती गई हैं। चेतना के विस्तार के साथ-साथ बीच की रेखाओं में मुखारित मौन रहता है। संविधान आधा स्वप्न और आधा सच होते हैं। कानून चेतना के सभी क्षेत्र नहीं छू पाता। लेकिन देखना यह है कि कानून चेतना की समग्रता को अपने दायरे में कैसे समेटता है? प्रकृति और आदमी के आपसी संबंध कितने हैं? यह एक समग्र व्यवस्था है।

स० रिन्पोछे ने डा० दयाकृष्ण और सुश्री रेखा के बीच करुणा को लेकर हुई बात को आगे बढ़ाते हुए कहा कि करुणा एक चित्तवृत्ति है। बोद्धधर्म और दर्शन में यह एक केन्द्रीय भाव है। चिंतन के पीछे अनुभव रहता है इसलिए परिस्थितियां चिन्तन की आधारक हैं।

आचार्य शालिग्राम ने इस बहस पर टिप्पणी करते हुए कहा कि निर्णय के लिए भारतीय न्याय में वाद-पद्धति अपनाई जाती है। इस तरह हम किसी निष्कर्ष पर नहीं पहुंच पा रहे। उन्होने आगे कहा कि मानवता के इतिहास में एक समय ऐसा भी रहा जब न शासक था न राजा। स्वार्थ और परार्थ की टकराहट से ही शासन पद्धतियां अस्तित्व में आई हैं।

यह शिविर का अंतिम दिन था और दोपहर पूर्व बहस को समेटना भी था, इसी उद्देश्य से एक और सत्र नए सिरे से शुरू किया गया, जिसकी अध्यक्षता डॉ० दयाकृष्ण ने की। डॉ० दयाकृष्ण ने कहा कि परिचर्चा की यह पद्धति भारतीय न होकर पाश्चात्य है। हम यहां कोई निर्णय करने नही बैठे हैं, बल्कि एक ऐसी सार्थक बहस ही हमारा उद्देश्य है जिसमें प्रश्न और उत्तर, एक के बाद एक निरन्तर प्रक्रिया के तहत चलते रहते हैं। प्रत्येक व्यक्ति यहां से उन विचारों को लेकर जाए, जो यहां व्यक्ति हुए हैं। क्या, कैसे होगा? यह एक चिरन्तन प्रक्रिया

है। उन्होंने श्री नवज्योति की बात के संदर्भ में कहा कि मानवाधिकार की परिचर्चा पश्चिम के एक विशिष्ट ऐतिहासिक संदर्भ में उठी थी, हमारे यहां भी उसी बात की जरूरत महसूस हुई।

डॉ० दयाकृष्ण ने आगे कहा कि अधिकार और अधिकारी में भेद करना चाहिए। मनुष्य जिस चेतना के स्तर पर है उस चेतना के स्तर से दूसरी चेतना पर पहुंचने का अधिकार भी होना चाहिए। यही साफल्य को प्राप्त करना है। अपनी संस्कृति की ओर मुड़कर देखते हुए यह जो आनन्द विभोरता है, यह समझ नहीं आती। कुछ नया जानने की यदि जिज्ञासा ही नहीं तो आज कुछ नव्य कैसे हो सकता है। उन्होंने कहा कि मैंने करूणा को केन्द्रीय भाव के अर्थों में नहीं लिया था। मेरा कहने का तात्पर्य यह था, और यह है भी, कि कोई भी संबंध जो बराबरी का नहीं है, वह संबंध ही नहीं है। डॉ० छत्रपति सिंह ने बात को आगे बढ़ाते हुए कहा कि हमारे संविधान में हमारी परंपरा से सम्बद्ध भी कुछ जुड़ा है, इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता। डॉ० दयाकृष्ण से, 'जो संबंध बराबरी का नहीं होता इसमें दोष है' सुश्री रेखा ने इसे स्पष्ट करने का निवेदन किया तो उन्होंने कहा—यह भावना का विषय है। विचार का जब भावना से संबंध होता है तो भावना आलोकित, मुखरित और विस्तारित होती है। निकष बराबरी है, नहीं तो दोष है। ईसा और एक निम्न प्राणी में भी बराबरी है। हम अगर यह नहीं मानते तो अन्याय करते हैं। श्री गिरधर राठी ने डॉ० दयाकृष्ण की बात के संदर्भ में कहा कि कर्त्तव्य और अधिकार परस्पर विरोधी नहीं। अधिकार प्रेम का भी है। जातियों के और समूहों के भी अपने अधिकार हैं। हम आज अधिकार की बात इसलिए कर रहे हैं कि अब तक कर्त्तव्य की भाषा ही बोली जाती रही है।

उन्होंने निराला की कविता 'सरोज स्मृति' का उदाहरण देते हुए कहा कि इसमें कर्त्तव्य और अधिकार दोनों हैं। डॉ० छत्रपति सिंह अधिकार और कर्त्तव्य के सामंजस्य के पक्ष में थे।

यह शिविर के समापन के क्षण थे। अध्यक्षता कर रहे डॉ० दयाकृष्ण ने सबको सम्बोधित करके छोटा-सा प्रश्न किया—कैसा लगा? सब खामोश थे। फिर उन्होंने निर्मल जी की ओर संकेत किया। निर्मल जी ने इतना ही जवाब दिया—बहुत अच्छा।

स. रिन्पोछे का कहना था हमें तो लाभ मिला। हम बौद्ध-दर्शन में पढ़ते रहे हैं, वास्तविक जीवन में अर्थ समझ आया। संबंध में समता होनी ही चाहिए। एक में अनेक और अनेक में एक हैं। इसका अनुवाद जीवन में होना चाहिए। कर्त्तव्य से ही अधिकार मिलता है।

अन्त में डॉ०दयाकृष्ण ने स्वयं कहा—इसे बौद्धिक यज्ञ, बौद्धिकसंकीर्तन या भावनात्मक संकीर्तन कहा जाए। यह बुद्धि और भावना का मिश्रण है।

—तुलसी रमण

संस्कृत दिवस समारोह : जांगला

हिमाचल प्रदेश के भाषा-संस्कृति विभाग के तत्वावधान में संस्कृत दिवस का राज्य-स्तरीय समारोह इस बार शिमला जिला के जांगला नामक ग्राम में श्रावणी पूर्णिमा 17 अगस्त, 1989 को हर्षोल्लास के साथ मनाया गया। हिमाचल प्रदेश के विभिन्न जिलों से आमन्त्रित विद्वानों, संस्कृतज्ञों और संस्कृत-प्रेमियों ने इसमें भाग लिया। गतवर्ष की भांति राज्य-स्तर पर यह दिवस इस बार भी नगरों से दूर ऐसे एक ग्रामाञ्चल के प्राकृतिक परिवेश में हुआ जहां इस पहाड़ी प्रदेश की पुरातन सभ्यता और विशिष्ट पहाड़ी संस्कृति की सुन्दर झलक अभी भी देखने को मिलती है।

जिला शिमला की तहसील रोहड़ू में स्थित जांगला गांव ऊंचे पर्वत-शृंगों, देवदारू, तोष, रै, बान आदि के घने जंगलों, नदी-नालों और प्राचीन मन्दिरों से सुशोभित है; जहां सेबों के नवरोपित वृक्षों के बागीचों ने इस अविकसित क्षेत्र की आर्थिक दशा सुधारने में काफी योगदान किया है। यह एक सुखद आश्चर्य का विषय है कि इस सुदूर क्षेत्र में गत कुछ वर्षों से एक संस्कृत महाविद्यालय चल रहा है जो अब केन्द्रीय संस्कृत संस्थान द्वारा एक आदर्श संस्कृत महाविद्यालय घोषित किया गया है। इसी महाविद्यालय के परिसर में 'संस्कृत दिवस' के इस भव्य समारोह का आयोजन हुआ।

संस्कृत दिवस समारोह में आमन्त्रित विद्वान शिमला से एक विशेष बस द्वारा जब जांगला पहुंचे तो स्थानीय जनता, सरस्वती संस्कृत महाविद्यालय के छात्र-छात्राओं और प्राध्यापक मण्डल ने उनका विधिवत् स्वागत किया। रास्ते में विद्वानों ने इस क्षेत्र के सुप्रसिद्ध प्राचीन हाटकोटी मन्दिर में हाटेश्वरी देवी के दर्शन किए। भाषा-संस्कृति विभाग के निदेशक श्री सी० आर० बी० 'ललित' ने इस प्राचीन ऐतिहासिक मन्दिर की स्थापना, पुरावृत्त और कला-वैभव की जानकारी बाहर से आये इन विद्वानों को दी। भगवती हाटेश्वरी देवी के मन्दिर के साथ आशुतोष भगवान शिव के एक अन्य प्राचीन शिखर शैली के मन्दिर में शिवलिंग तथा अन्य देव-देवियों की कलापूर्ण प्राचीन मूर्तियां भी स्थापित हैं। गजानन गणपति की नर्तन मुद्रा में प्रस्तर मूर्ति अति सजीव व कलापूर्ण है। मन्दिर परिसर काफी सुन्दर और स्वच्छ है जिसका जीर्णोद्धार किया गया है। मन्दिर के समीप नवनिर्मित राजकीय विश्राम गृह में विद्वत् समाज को दोपहर का भोजन कराया गया।

सायं जांगला में विद्यालय के प्रांगण में निर्मित मञ्च पर वाग्देवी के चित्र के समक्ष दीप प्रज्वलित कर पंचायत समिति चुहार के अध्यक्ष कंवर शेरसिंह ने संस्कृत दिवस समारोह का

विधिवत् उद्घाटन किया। स्थानीय विधायक ठाकुर नेहरसिंह इस समारोह के मुख्य अतिथि थे। राजकीय संस्कृत महाविद्यालय, सुन्दर नगर (मण्डी) के प्राचार्य हरिदत्त शर्मा के सस्वर वेद-मन्त्रोच्चारण के उपरान्त समारोह का शुभारंभ हुआ। निदेशक श्री ललित ने अपने स्वागत-भाषण में इस अवसर पर आये संस्कृत-विद्वानों, स्थानीय विधायक व जन-समुदाय के प्रति आभार प्रकट किया तथा सरकार द्वारा संस्कृत-भाषा और साहित्य के प्रचार और प्रसार की दिशा में भाषा एवं संस्कृति विभाग की विभिन्न योजनाओं और कार्यक्रमों पर प्रकाश डाला।

इस दो दिवसीय समारोह के प्रथम सत्र के रूप में कवि-सम्मेलन प्रदेश के वयोवृद्ध मनीषी आचार्य शालिग्राम शर्मा की अध्यक्षता में आरम्भ हुआ जिसमें सोलह कवियों ने संस्कृत में स्वर-चित रचनाएं पढ़ीं। कविता पाठ करने वाले कवियों में कुमारी अनिता शर्मा, आचार्य हर्ष-वर्द्धन, आचार्य मदन मोहन शर्मा व डॉ० हरिदत्त, आचार्य रामानन्द, श्री नरोत्तमदत्त शास्त्री आचार्य हरिदत्त, प्रो० मनसाराम शर्मा 'अरुण', आचार्य हरिप्रसाद शर्मा, आचार्य लक्ष्मीकान्त द्विवेदी, आचार्य शुकदेव शर्मा, डॉ० गंगादत्त शर्मा, आचार्य कर्मसिंह आदि थे।

उसी रात्रि को स्थानीय संस्कृत महाविद्यालय के छात्र-छात्राओं ने महाकवि भास के 'स्वप्न वासवदत्तम्' नाटक का साभिनय मंचन किया। संस्कृत के इस नाटक को उपस्थित ग्राम-वासियों और बच्चों ने धैर्यपूर्वक देखा। नाटक में भाग लेने वाले युवा कलाकारों का संस्कृत भाषा में कथोपकथन बड़ा सुन्दर था जिसे संस्कृत न जानने वाले श्रोतागण भी थोड़ा-बहुत समझ रहे थे।

दूसरी प्रातः लेखक संगोष्ठी का आयोजन हुआ। इस विद्वद्गोष्ठी का मुख्य विषय था—"महाभारत में पाणिवाद और राष्ट्र-भावना"—जिसका उल्लेख डॉ० बलदेव उपाध्याय ने अपने 'संस्कृत साहित्य का इतिहास' ग्रन्थ में इस प्रकार किया है—

"मानवता का उन्नायक तत्त्व पुरुषार्थ ही है। व्यास के शब्दों में यह सिद्धान्त 'पाणिवाद' के नाम से विख्यात है। जगत् में जिन लोगों के पास हाथ हैं—जो कर्म में दक्ष और उत्साही हैं—उनके सब अर्थ सिद्ध होते हैं। संसार में पाणिलाभ से बढ़कर लाभ ही कोई दूसरा नहीं है।" इस संगोष्ठी की अध्यक्षता संस्कृत महाविद्यालय कुल्लू के प्राचार्य डॉ० गंगादत्त शर्मा ने की। आचार्य शालिग्राल शर्मा ने उपरोक्त विषय पर अपना शोधपूर्ण पत्र पढ़ा। अपने इस शोध-पत्र में आचार्य प्रवर ने महाभारत को एक शास्त्रीय विश्वकोश और राष्ट्रीय महाकाव्य की संज्ञा देते हुए इस विशालतम धर्म ग्रंथ के शान्ति तथा उद्योग पर्वों में वर्णित पाणिवाद (कर्मवाद) की भावना का विवेचन किया और तत्कालीन राष्ट्र-भावना पर अपने सारगर्भित विचार व्यक्त किये। इस शोधपत्र की परिचर्चा में सर्वश्री परमानन्द शास्त्री, हरिश्चन्द्र शास्त्री, आचार्य गोकुलचन्द्र, आचार्य रामानन्द, प्रो० बलवंत कुमार, आचार्य कुमारसिंह प्रो० तुलसी रमण, सच्चिदानन्द शास्त्री, डॉ० वेद प्रकाश 'अग्नि', प्रो० अरुण तथा अन्य विद्वानों ने भाग लिया। गोष्ठी का संचालन विपाशा के सम्पादक श्री तुलसी रमण ने किया।

स्थानीय विधायक ठाकुर नेहरसिंह ने अपने अध्यक्षीय भाषण में जांगला जैसे सुदूर और पिछड़े क्षेत्र में इस राज्यस्तरीय समारोह को आयोजित करने पर भाषा-संस्कृति विभाग को साधुवाद दिया और सुझाव दिया कि इस प्रकार के आयोजनों को ग्रामीण क्षेत्रों में रखना संस्कृत और संस्कृति के रक्षण, परिवर्द्धन में सहायक होगा। उनका यह कथन सार्थक था कि अब समय आ गया है जब हमें नगरों से बाहर ग्रामों की ओर जाना होगा, क्योंकि आज भी ग्रामांचलों

में संस्कृति सुरक्षित हैऔर इस प्राचीन कला सम्पदा की रक्षा करना हमारा कर्त्तव्य है।

इस समारोह में आये विद्वानों ने जांगला के समीप एक अन्य ऐतिहासिक ग्राम 'मसली' में महाभारतकालीन पाण्डव मन्दिर भी देखा जिसमें द्रौपदी सहित पांचों पाण्डवों की कलापूर्ण भव्य प्रस्तर मूर्तियाँ प्रस्थापित हैं। जिला भाषा अधिकारी शिमला—श्री ध्यान चन्द भागटा ने इस क्षेत्र की लोक संस्कृति तथा महाभारत कालीन पुरावशेषों—मन्दिरों, मूर्तियों, नदियों, पर्वत खण्डों, लोक गाथाओं तथा जन श्रुतियों की जानकारी बाहर से आये इन विद्वानों को दी। उनका कहना था कि अपने वनवास काल में पाण्डुपुत्र इस क्षेत्र से भी गुज़रे थे।

समारोह की समाप्ति पर डॉ० गंगादत्त विनोद विरचित श्री भीमाकाली 'देव्यष्टकम्' तथा परमानन्द शास्त्री 'तीर्थवान' कृत 'श्री हिमनाट्य गीता' पुस्तकों की एक-एक प्रति विद्वानों को सप्रेम भेंट की गई।

—हरिश्चन्द्र शर्मा

ज़िला स्तरीय संस्कृत समारोह

जिला कुल्लू का संस्कृत समारोह दिनांक 21 अगस्त' 89 को गांव खोखण में आयोजित किया गया। कार्यक्रम में सांस्कृतिक कार्यक्रम तथा गोष्ठी एवं कवि सम्मेलन का आयोजन किया गया। वयोवृद्ध साहित्यकार श्री चन्द्रशेखर बेबस द्वारा ज्योति प्रज्ज्वलित करके समारोह का उद्घाटन किया गया। कार्यक्रम का आरम्भ श्री रामकृष्ण शर्मा द्वारा प्रस्तुत स्तोत्रों से किया गया। उसके पश्चात् अन्नपूर्णा संस्कृत विद्यालय के प्रिंसिपल श्री गणेशदत्त मिश्र ने संस्कृत के महत्त्व पर प्रकाश डालते हुए इसके उत्थान पर बल दिया।

श्री भूपेन्द्र ठाकुर, कुमारी कमला ठाकुर, श्री चन्द्रमणि कपूर आदि ने भी अपने विचार व्यक्त किए। श्री चन्द्रशेखर बेबस तथा श्री इन्द्रदत्त शास्त्री ने संस्कृत कविताओं का पाठ किया।

कार्यक्रम के अन्त में 'यंग फार्मर क्लब खोखण' के कलाकारों द्वारा सांस्कृतिक कार्यक्रम प्रस्तुत किया गया।

जिला सिरमौर में संस्कृत समारोह नाहन से 38 किलोमीटर दूर रा० वरिष्ठ पाठशाला सराहां में सम्पन्न हुआ। पूर्व संध्या पर श्री रामपाल मिश्र की अध्यक्षता में एक कवि सम्मेलन भी आयोजित किया गया। जिला के गण्यमान्य कवियों में से श्री सन्तराम गौड़, डा० प्रेमलाल गौतम, डा० मस्तराम शर्मा, आचार्य ओमप्रकाश राही, आचार्य सीताराम ठाकुर, आचार्य गोविन्द राम बडोनी आदि ने कवि सम्मेलन में भाग लिया। मंच संचालन डा० नागदत्त डिमरी ने किया। संस्कृत दिवस के दिन संस्कृत भाषण प्रतियोगिता, श्लोकोच्चारण, संस्कृत भाषा में नाटक मंचन आदि विभिन्न कार्यक्रम भी हुए।

संस्कृत नाटकों में रा० उच्च पाठशाला वोगधार के छात्रों द्वारा—'भोलारामस्यजीवः' और रा० संस्कृत महाविद्यालय नाहन द्वारा 'कस्य स्विद्धनम्' नामक नाटक प्रस्तुत किए गए।

भाषण प्रतियोगिता में प्रथम, द्वितीय, तृतीय, पुरस्कार आशा कुमारी (वोगधार) सविता कुमारी (सराहां) अंजु कुमारी (सराहां) को प्राप्त हुए।

श्लोकोच्चारण में सविता कुमारी (सराहां) आशा कुमारी (वोगधार) प्रमेश कुमार (मानगढ़) पुरस्कृत हुए। कुमारी रेखा (नैना टिक्कर) कुमारी कनिका और कुमारी अंजु (सराहां) को सांत्वना पुरस्कार मिले।

इस अवसर पर रा० उच्च वरिष्ठ पाठशाला सराहां के छात्र-छात्राओं द्वारा भी सांस्कृतिक कार्यक्रम प्रस्तुत किया गया। अध्यक्ष डा० खुशीराम गौतम ने पुरस्कार वितरित किए। इस समारोह की सफलता में जिला सिरमौर संस्कृत शिक्षक परिषद् का विशेष योगदान रहा।

हिन्दी दिवस समारोह : बिलासपुर

इस बार भाषा एवं संस्कृति विभाग द्वारा राज्य स्तरीय हिन्दी दिवस समारोह का आयोजन 14 तथा 15 सितम्बर, 1989 को बिलासपुर में किया गया। इस दो दिवसीय कार्यक्रम का उद्घाटन 14 सितम्बर को प्रातः स्थानीय कमैटी हाल में बिलासपुर के अतिरिक्त जिलाधीश, श्री एम. एल. शर्मा ने किया। इससे पूर्व विभाग की ओर से सहायक निदेशक, श्री जगदीश शर्मा ने प्रदेश सरकार द्वारा हिन्दी के प्रचालन के लिए सरकारी काम-काज तथा साहित्य के क्षेत्र में चलाई गई विभिन्न योजनाओं तथा कार्यक्रमों का हवाला दिया।

प्रथम सत्र कहानी को लेकर था जिसमें प्रदेश के केवल नवोदित कहानीकार ही शामिल हुए। श्री दलीप सिंह वर्मा, श्रीमती यमुना सांख्यान, कुमारी शान्ता वर्मा और श्रीमती सुदर्शन पटियाल—इन्होंने क्रमशः चक्र ग्रहों का, जंजीर, यथार्थ, तथा डूबते किनारे शीर्षक से अपनी कहानियां प्रस्तुत कीं। समीक्षकों की राय थी कि ये कहानियां अपने आस-पास के परिवेश तथा 'यथार्थ' को खोजती कहानियां हैं और इन कहानीकारों की संभावनाओं की ओर संकेत करती हैं। समीक्षकों में श्री सुन्दर लोहिया, श्री एम. आर. ठाकुर, डा० अनिल राकेशी तथा श्री प्रेम विज प्रमुख थे। इस अवसर पर उपस्थित दैनिक ट्रिब्यून के सहायक संपादक श्री विजय सहगल ने सभी कहानीकारों में सम्भावना को स्वीकारते हुए कहा कि इन कहानियों में बहुत कुछ सुधार करने की आवश्यकता है। उन्हें कु० शान्ता वर्मा की कहानी बेहतर लगी।

शाम को हिन्दी कवि सम्मेलन का आयोजन किया गया जिसमें प्रदेश विभिन्न क्षेत्रों के कवियों ने भाग लिया। डा० राकेशी ने अपना एक पुराना हिन्दी गीत सुनाया। इसके बाद प्रकाश पंत, बद्रीसिंह भाटिया, द्विजेन्द्र द्विज, हरिप्रिया, दीनू कश्यप, प्रो० चतुर सिंह, कुमारी सरोज, नरवीर लांबा व नरेन्द्र अरुण ने अपनी रचनाएं पढ़ीं। गीतकार सत्येन्द्र शर्मा तथा सुन्दर लोहिया की कविताओं को श्रोताओं ने पसन्द किया।

15 सितम्बर को प्रातः श्री विजय सहगल ने "हिन्दी की साहित्यिक पत्रकारिता—समस्याएं तथा समाधान" विषय पर अपना आलेख प्रस्तुत किया जिसमें हिन्दी की साहित्यिक पत्रकारिता का संक्षिप्त इतिहास प्रस्तुत करने के उपरान्त पत्रकारिता की सामान्य

समस्याओं का उल्लेख करते हुए अर्थाभाव, प्रचार-प्रसार की कठिनाइयों, प्रकाशन और मुद्रण जैसे अनेक प्रश्नों पर विचार किया गया। चर्चा में भाग लेते हुए श्री जगदीश शर्मा ने भी पत्रकारिता की समस्याओं पर प्रकाश डाला। डॉ० चमनलाल गुप्त ने व्यावसायिक, सरकारी तथा विशेष धारा से जुड़े लेखकों द्वारा की जाने वाली साहित्यिक पत्रकारिता का उल्लेख किया और इन्होंने हिन्दी क्षेत्र में पाठकों के अभाव की ओर भी संकेत किया। श्री प्रेम विज का विचार था कि पत्र-कारिता का साहित्य के विकास को महत्वपूर्ण योगदान रहा है। राकेशी के अनुसार यह गोष्ठी पत्रकारिता के सम्बन्ध में बहस की शुरूआत भी, अन्त नहीं। श्री खजूरिया ने हिमाचली साहि-त्यिक पत्रकाारिता की बात करते हुए कहा कि राजनीतिक प्रभाव से दूर रहकर इस दिशा में साधन सम्पन्न लोगों को आगे आना चाहिए। इसके अतिरिक्त दीनू कश्यप, प्रो० लोहिया और बद्रीसिंह भाटिया ने भी बहस में भाग लिया। इस सत्र की अध्यक्षता श्री सत्येन्द्र शर्मा ने की। उनके अनुसार पत्रकारिता घर फूंक तमाशा देखने वाली बात है। उन्होंने कहा कि प्रदेश में पत्रिकाओं के लिए अनुदान की नीति को अधिक व्यापक और सुदृढ़ बनाना चाहिए। मंच का संचालन लक्ष्मी चौहान ने किया।

इसी दिन शाम को मोहन राकेश द्वारा रचित 'अषाढ़ का एक दिन' का मंचन स्थानीय किसान भवन में किया गया। यह नाटक परिधि(शिमला) द्वारा प्रस्तुत किया गया। इसका निर्दे-शन श्री देवेन जोशी ने किया। नाटक में अम्बिका (मंजू) विलोम (विजय शर्मा) तथा कालिदास (राजन कौशल) की भूमिकाएं सराही गई। मल्लिका की भूमिका को भी बन्दना शर्मा ने अच्छी तरह निभाया, परन्तु उनकी आवाज कुछ दबकर रह गई। यह हॉल की त्रुटि थी। बिलासपुर में इस मंचन के लिए यथोचित हॉल उपलब्ध न था।

हमीरहठ चित्र-सीरीज़-कथा

अलाउद्दीन का राजमुकुट काट गिराने से हमीर और अलाउद्दीन के मध्य युद्ध निश्चित हो गया था। दोनों युद्ध के मैदान के लिए तैयार हो रहे थे। हमीर ने पहले अपनी रानियों से विदा ली और उसके बाद अपनी मां से भी समर भूमि की ओर प्रस्थान करने के लिए वह विदा लेता है। इस चित्र में हमीर और अलाउद्दीन की सेनाएं रणभूमि में युद्ध के लिए आमने-सामने दर्शायी गई हैं।

क्रमशः
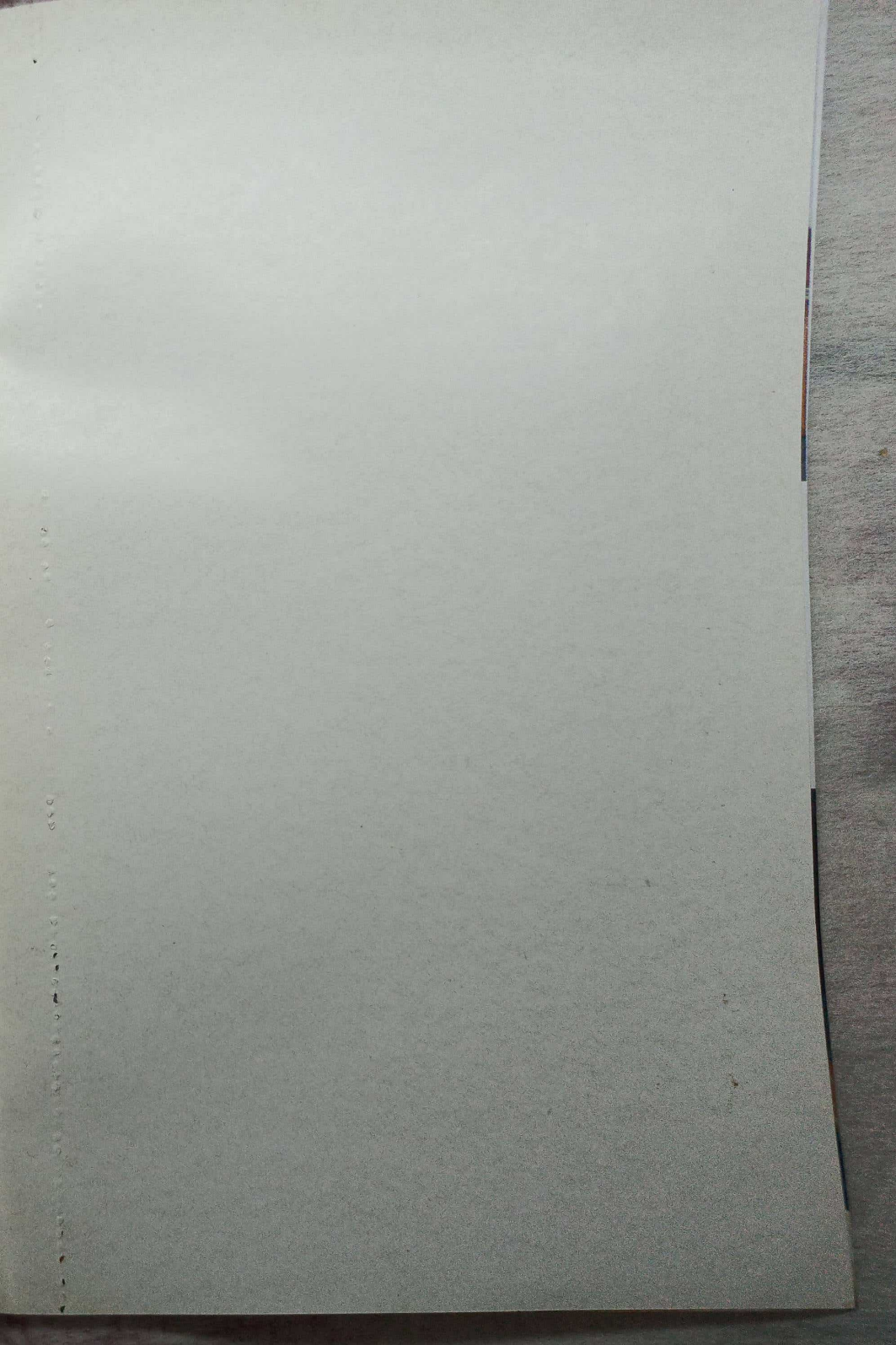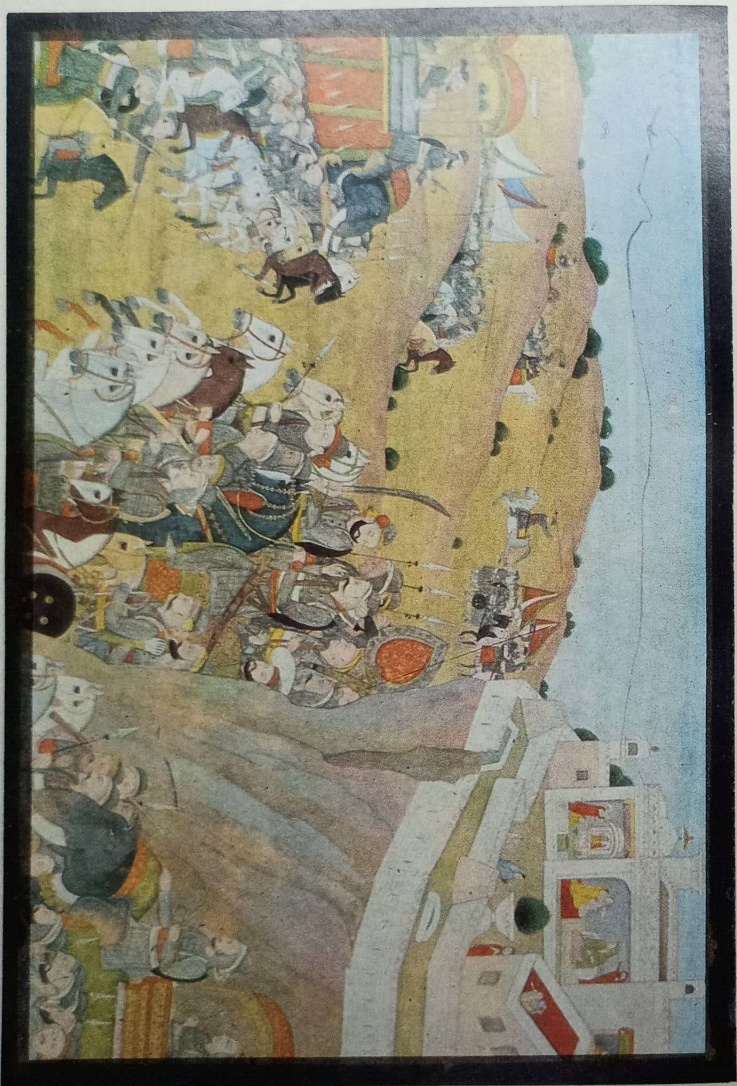
विपाशा उपहार चित्र

हमीर तथा अलाउद्दीन की सेनाएं आमने-सामने

भूरीसिंह संग्रहालय चंबा; हमीरहठ सीरीज़ (गुलेर-कांगड़ा शैली 1780-90). चित्र : पांच

वत्सल निधि लेखक शिविर के उद्घाटनावसर परः बायें से डॉ० दयाकृष्ण, महाराज कृष्ण काव, डॉ० लक्ष्मीमल्ल सिंघवी, फ्रांसीन कृष्णा, नव ज्योति, तुलसी रमण तथा इला डालमिया,

परिचर्चा के दौरान बायें सेः नंदकिशोर आचार्य, शीन. काफ. निजाम, गिरधर राठी, अग्नि शेखर, प्रयाग शुक्ल तथा निर्मल वर्मा (बोलते हुए)
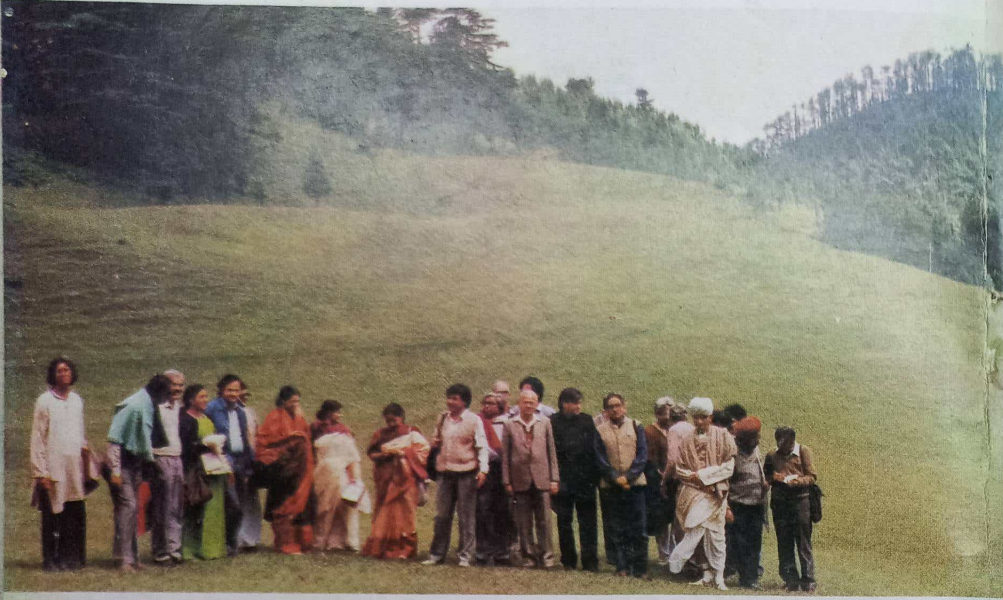
VIPASHA-28, SEPTEMBER-OCTOBER 1989 R.N. 42497/85 PRICE: RS. 2/-

नाल देहरा में : हरी घास पर क्षण भर

विदाई से पूर्व; बायें सेः इला डालमिया, फ्रांसीन कृष्णा, सुन्दर लोहिया, डॉ० बंशीराम शर्मा, डॉ० निझावन, सत्येन्द्र शर्मा, आचार्य शालिग्राम शर्मा, डॉ० दयाकृष्ण, मुकुंद लाठ, सुदर्शन वशिष्ठ तथा अवतार एनगिल।

निदेशक, भाषा एवं संस्कृति विभाग, हिमाचल प्रदेश, त्रिशूल, शिमला-१७१००३ द्वारा प्रकाशित तथा शांति मुद्रणालय, गली नं. ११, विश्वासनगर दिल्ली-३२ द्वारा मुद्रित।